अनन्त श्री-वि. जगद्गुरु रामेश्वरानन्दाचार्य

❀ श्रीमद्भगवते रामानन्दाचार्याय नमः ❀

श्री भक्तिभूषणभाष्य सहित

ब्रह्मसूत्र-हरिभाष्यम्

भाष्यकार :-

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

श्रीस्वामी हर्याचार्य जी महाराज

काशीपीठ एवं हरिधामपीठ-गोपाल मन्दिर

रामघाट श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (साकेत) उ० प्र०

तथा

तच्चरणचञ्चरीक-रामदेवदास श्रीवैष्णव

जय श्री राम २१।५।८६

❀ श्रीस्वामिहर्याचार्यग्रन्थमालायां सप्तमं पुष्पम् ❀

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरुरामानन्दाचार्य

श्रीस्वामिहर्याचार्यप्रणीतम्

ब्रह्मसूत्राख्यवेदान्तदर्शनस्य

❀ श्रीहरिभाष्यम् ❀

तच्च भक्तिभूषणेति हिन्दीभाष्येणसमन्वितम्

(प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः)

❀ महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी ❀

प्राच्यप्रतीच्योभयविद्यानिष्णातानां काशीपीठाधीश्वराणां वाग्धरीणां श्रीसीतारामचरणचामराणां हिन्दुधर्मोद्धारक-धौरेयाणां जगद्गुरुरामानन्दाचार्यपदालङ्कुर्वाणानां श्रीस्वामिहर्याचार्याणामनुग्रहाकाङ्क्षी—

भक्तिभूषणभाष्यकारः

रामदेवदासः, व्याकरणवेदान्ताचार्यः

श्रीहरिधामगोपालमन्दिरम्, रामघट्टः, श्रीअयोध्याजी

हर्याचार्य प्रकाशन

श्री रामीय संवत् १, ८१, ९३, ९७
श्री विक्रमाब्द २०५३
श्री रामानन्दाब्द ६९७

प्रथम संस्करण--१००० प्रति

प्रकाशन तिथि-श्री जानकी नवमी १९९६ ई०

मूल्य-पुनः प्रकाशनार्थ पचास रु० मात्र

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
ज० गुरु रा० स्वामी हर्याचार्य जी महाराज
श्री हरिधाम गोपाल मन्दिर-रामघाट
अयोध्या, जि०-फैजाबाद, उ०प्र०, पिन-२२४१२३

मुद्रक :
मनीराम प्रिंटिंग प्रेस
शास्त्रीनगर, श्रीअयोध्याजी

शुभ कामना

महर्षि वेदव्यासरचित ब्रह्मसूत्र 'वेदान्त दर्शन' का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें अल्प शब्दों में परब्रह्म के स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है, अतः ब्रह्मसूत्र कहा जाता है। यह ग्रन्थ वेदों के चरम सिद्धान्त का निदर्शन कराता है अतः इसे वेदान्त दर्शन कहा जाता है। वेदों के शिरोभाग—ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों के सूक्ष्मतत्व का दिग्दर्शन कराने के कारण इसका नाम सार्थक है। अनेक आचार्यों ने स्वमतानुसारेण इसकी व्याख्या की है।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्य जी महाराज ने इस पर 'विशिष्टाद्वैत संवलित वृत्ति' लिखकर 'उत्तर-मीमांसा' के ज्ञानकाण्ड एवं उपासना काण्ड को उजागर किया है और गोस्वामी जी की ग्रन्थावली से जोड़कर सार्वजनिक बनाया है, इसके लिए मेरा सादर अभिनन्दन एवं अभिवन्दन है। आचार्य का यही कार्य है "इष्टे अनुरागः अनिष्टपरिहारः" वह इष्ट में अनुराग और अनिष्टपरि-हार यह आचार्य श्री के द्वारा सम्पादन हो रहा है इस पर मेरी शुभ कामना है।

भवदीय :

श्री महान्त परमहंस रामचन्द्रदास

श्रीपंच रामानन्दीय दिगम्बर अखाड़ा, अयोध्या

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्य हरिधाम-
गोपाल मन्दिर, रामघाट–अयोध्या को सादर
सप्रेम दण्डवत् !

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुयी कि वेदान्त दर्शन ब्रह्मसूत्र पर आप द्वारा लोकोपयोगी भाष्य किया जा रहा है। आपने सम्प्रदाय में अनेक साहित्य देकर श्री रामानन्द सम्प्रदाय का बहुत बड़ा उपकार किया जिसके लिए मैं हार्दिक अभिनन्दन करते हुये आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप-श्री द्वारा श्रीसम्प्रदाय की समर्थताबद्ध सेवा सदैव होती रहेगी। यही मेरी शुभ कामना है।

भवदीय :

महान्त रामस्वरूपदास ब्रह्मचारी
नृसिंह मन्दिर, गाँधी नगर (कोंच)
जनपद–जालौन (उ०प्र०)

अभिनन्दन

वेदान्त दर्शन में ब्रह्मसूत्र पर सभी आचार्यों ने स्व-स्वमतानुसार व्याख्या प्रस्तुत की है जो अपने आप में सम्पूर्ण और अनुपमेय है। फिर भी साम्प्रदायिक जगत् में विशिष्टाद्वैत सम्वलित सूत्रों पर संस्कृत वृत्ति और भक्ति भूषण नाम की हिन्दी व्याख्या जन सामान्य तक पहुँचाने का अनन्त श्रीविभूषित ज०गुरु रा०स्वामी हर्याचार्यजी महाराज ने जो अद्वितीय प्रयास किया है, वह प्रशंसनीय है।

आचार्य श्री ने इसे श्रीसम्प्रदाय से जोड़कर और गोस्वामी जी की ग्रन्थावली से संवलित कर जो लोकोपकार किया है, उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। ब्रह्मसूत्र जैसा कठिन ग्रन्थ भक्तिपरक होकर जनता जनार्दन के समक्ष आ रहा है—यह प्रसन्नता की बात है और इसके लिए मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि वे आचार्यश्री को दीर्घायु प्रदान करें।

सन्तचरणानुरागी—

बाबा रामदास ब्रह्मचारी

❀ श्रीरामो विजयतेतराम् ❀

।। श्रीसम्प्रदायाचार्याणां परम्परानुक्रमणिका ।।

प्रथमे कारणं रामः श्रीसीताथ द्वितीयके ।
आञ्जनेयविधिश्चाथ वशिष्ठर्षि हि पञ्चमे ।। १ ।।
पराशरोऽथ वै व्यासः शुकाचार्यो हि सप्तमे ।
बोधायनो महायोगी ततो गंगाधरोऽभवत् ।। २ ।।
सीतारामपदासक्तः सदाचार्यस्ततो महान् ।
तस्माद्रामेश्वराचार्यो द्वारानन्दः प्रतापवान् ।। ३ ।।
देवानन्दमहाचार्याद् श्यामानन्दस्तु भक्तिमान् ।
ततो जातो महायोगी श्रुतानन्दस्तु योगिराट् ।। ४ ।।
चिदानन्दः स्वरूपज्ञः पूर्णानन्दस्ततोऽभवत् ।
श्रियानन्दो बहुशिष्येषु हर्यानन्दो बभूव ह ।। ५ ।।
राघवानन्दस्ततः प्राप्तो रामानन्दं स्वयं हरिम् ।
प्रस्थानत्रयभाष्यञ्च कृतं संसारहेतवे ।। ६ ।।
श्रीरामानन्दसताधारः शास्त्रालोडनतत्परः ।
श्रीमद्भगवदाचार्यः पण्डितेड्यः सदा हृदः ।। ७ ।।
वेदवेदान्ततत्वज्ञः सीतारामपदे रतः ।
आचार्यः शिवरामश्च जातः शान्तस्वरूपवान् ।। ८ ।।

बहूनां भाषाणामधिपतिरुदग्रस्त्वमसि वै,
बहूनां विज्ञानां त्वमसि परमं मित्रमधुना ।
बहूनां भीतानां त्वमसि शरणं विश्रुतमहो,
सदा हर्याचार्यो यतिपति सुरूपो विजयते ।। ९ ।।

—आचार्य रामदेवदास

जगद्गुरु रा० श्रीस्वामी हर्याचार्य वैभवपञ्चकम्

रामदेवदास शास्त्री पट्टी सागरिया हनुमानगढ़ी—अयोध्या

श्रृङ्गारीपति—द्वारकेति सरयूपारीण—शास्त्रान्वित:,
सीताराम—पदारविन्द—रसिक: शाण्डिल्यवंशान्वित: ।
बस्तीजनपदपावने द्विजवरो ग्रामे मझौवा पुरा,
प्राप्तो ज्येष्ठसुतं कुलैकतिलकं स्वाचारनिष्ठं हरिम् ।।१।।

बाल्येऽत्यन्तकृपालु—साधुगुणवान् सौशील्यज्ञानाम्बुधि:,
गायन् रामचरित्रपाठललितं कामादि—दोषापहम् ।
पितृप्राप्त—विरागभावगहनं श्लोकादिगानं तथा,
मातु: प्राप्तदयालुतां शुभमहौदार्यं सदा सत्यता ।। २ ।।

सोऽयं यो भव—भोगरोग—रहित: शास्त्रार्थपारङ्गत:,
विद्वद्वृन्द—सुसेव्य—साधुमहिमा - सम्पोषको मानद: ।
रामानन्द यतीश्वरस्य यदभूत् क्रान्ति: पुरा पावनी,
तत्सम्यक् परिपाल्यते निजगुणै: श्रीसम्प्रदाये दृढ़: ।। ३ ।।

स्वध्याये सततं प्रगाढमनसा ध्यानं सदा राघवे,
गायन् रामकथासुधां सुखमयीं वन्दीयसां दुर्लभाम् ।
गाम्भीर्यादिगुण—प्रधान-निचयै: पूर्णो निरालस्यक:,
हर्याचार्य--यतीश्वरो विजयते स्वाधर्म्यनिष्ठां वहन् ।। ४-।

राग--द्वेष—वियुक्त—सार्थवचनै: सन्दिश्यते सर्वदा,
सर्वेषां प्रियभाव—मानरहितस्तुल्यस्सदा जीवने ।
सीतारामप्रतापमात्र—मनुते सर्वास्ववस्थां पुन:,
हर्याचार्य—यतीश्वरो विजयतां स्वाचार्यनिष्ठां वहन् ।। ५ ।।

इति अयोध्यावास्तव्यरामदेवदासविरचितं श्रीस्वामी हर्याचार्य
वैभवपञ्चकं - सम्पूर्णम् ।

रचयिता—खाकी बापू

"मिट जाय भीति भव बंधन की"

श्री हरि ही आए भूतल पर श्री हर्याचार्य स्वरूप धर्‌यो।
प्रस्थानत्रय पर भाष्य रचे, अरु हनुमत् भाष्य अनूप कर्‌यो॥
हनुमान कवच का हरी भाष्य अति दिव्य भक्ति प्रतिपादित है।
पन्ने पन्ने में भरा बोध सब शास्त्रों से अनुप्राणित है॥
'हनुमान' भक्ति के आगर हैं श्री रामचरण अनुरागी हैं।
धन धन हैं हर्याचार्य स्वामि भूतल में अति बड़भागी हैं॥
इनके मनमें श्रीराम बसे हनुमन्त लाल के प्यारे हैं।
रग रग में हैं श्री सीता जी ऐसे आचार्य हमारे हैं॥
जय जगद्‌गुरु रामानन्द स्वामी हर्याचार्य महामुनि को।
हर भाष्य में भक्तीसार भरा बतलाया श्री बजरंगी को॥
श्रद्धा विश्वास भरा इनमें है परम शान्त निष्काम सदा।
अविचल निर्मल मन इनका है, गुन गाते सीताराम सदा॥
विनवत है रामकुमार भक्ति दो राघवेन्द्र श्री चरणों की।
हे रामानन्दाचार्य प्रभू मिट जाय भीति भव बंधन की॥

मारुति-मन, रुचि भरत की लखि, लखन कहो है।
कलि-कालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबहीहै॥
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैंहूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है॥

(गो० तुलसीदास--विनयपत्रिका)

वर्तमान काशी पीठाधीश्वर श्रीरामानन्द
सम्प्रदायाचार्य विद्यावाचस्पति व्याख्यान
वाचस्पति मार्तण्ड प्रस्थानत्रयहरिभाष्यकार
अनेक सत्संग सभाओं के संस्थापक अ० श्री
वि० जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हयाचार्य
जी महाराज हरिधाम गोपाल मन्दिर
रामघाट श्री अयोध्या जी
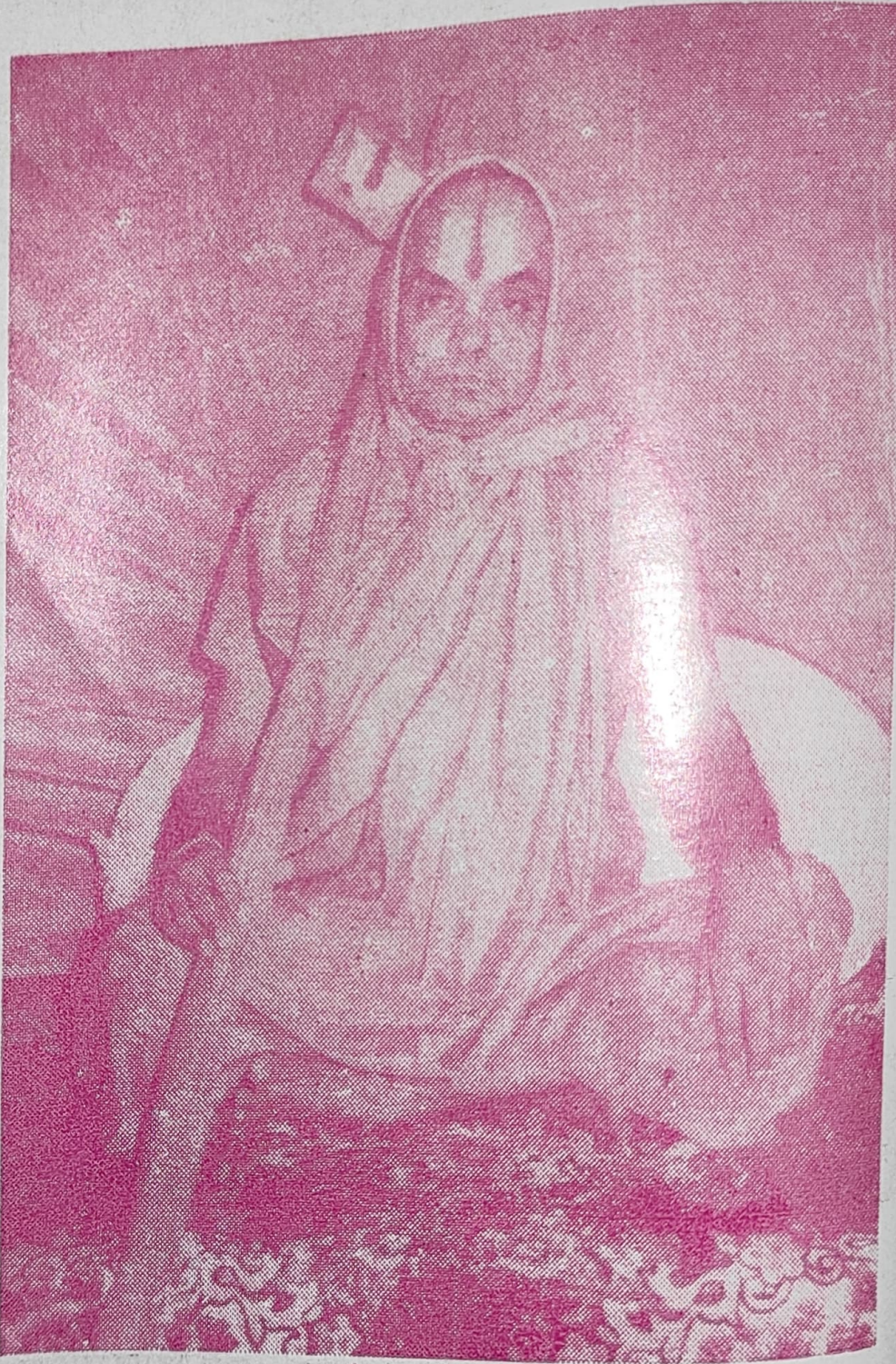
२५वें आचार्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्य

॥ श्रीरामोविजयतेतराम् ॥

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

प्रस्थानत्रय भाष्यकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीहर्याचार्यजी महाराज

सनातन धर्मके अनेक आचार्य महापुरुषों ने गीता उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र पर अपने-अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए भाष्य लिखे हैं लिख रहे हैं और आगे भी लिखते रहेंगे। हमारे आर्ष ग्रन्थों की यही विशेषता है कि उनको मंथन करने से सभी प्रकार के अनुपम रत्नों की प्राप्ति होती है।

भगवान रामानन्दाचार्यजी महाराज ने भी प्रस्थानत्रय पर भाष्य किये हैं और विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करके मानव मात्र को भगवान श्री सीताराम जी महाराज की परम पावन भक्ति प्रपत्ति का अधिकार प्रदान किया है, तथा अति विषम काल में भारतीय संस्कृति एवं भारत राष्ट्र की रक्षा की थी। परमपूज्य आचार्य चरणों की यह निर्भय घोषणा थी कि—

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः, शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत् प्रभोः।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं न चो, न चापिकालो नहि शुद्धतापि वा॥

भगवान की भक्ति प्रपत्ति का अधिकारी मानव मात्र है। भगवान् की शरणागति में विशुद्ध भाव एवं प्रबल अनुराग की आवश्यकता होती है न कि कोई विशेष जाति, वर्ण कुल या पद पैसा या प्रतिष्ठा की। यही तो वास्तविक जगदगुरु का

कार्य था जो भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी ने अति विषम काल में किया था । आचार्य चरणोंने अपने पावन उपदेश से बिदेशी शासकों के सामने अपनी दिव्य एवं ओजस्वपूर्ण वाणी से राष्ट्र एवं समाज के सामने प्रबल नवचेतना का विगुल बजाया था और श्रीराम भक्ति के दरवाजे सबके लिये सदा सर्वदा के लिए खोल दिये थे। पूज्यपाद आचार्य चरण सर्वाधिक उदार आचार्य महापुरुष थे । यही कारण है कि श्रीरामानन्दीय संत जन अति उदारता पूर्वक सर्व जन हिताय का दिव्य भाव रखकर देश एवं समाज की अहर्निश सेवा करते हैं। हमारे आराध्य देव भगवान श्रीसीताराम जी तथा भगवान रामानन्दाचार्यजी महाराज की उदारता कृपालुता, भक्त वत्सलता अन्यत्र दुर्लभ है । यथा—

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ।।१।।
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।२।।
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ।।३।।
तुलसिदास सब भांति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ।।४।।

(विनय पत्रिका १६२)

विना सेवा किये ही द्रवित होकर कृपा करें ऐसे उदार श्रीराम जी के अलावा और कौन है ? प्रभु श्रीराम दीनों पर

अकारण कृपा करते हैं । उनके समान उदार और कोई है ही नहीं । बड़े-बड़े ज्ञानी, मुनि योग वैराग्य आदि अनेक साधनों के द्वारा जो गति प्राप्त नही कर पाते हैं वही गती भगवान श्रीरामजी ने अति उदारता पूर्वक गीध और सबरीजी को प्रदान कर दी और जरा सा भी उनको ऐसा न हुआ कि मैंने इनको परमगती प्रदान की है ।

रावण ने अपने सिर अर्पण करके भगवान शिवजी से जो संपत्ति प्राप्त की थी वही सम्पत्ति उदार श्रीरघुनाथजी ने संकोच के साथ श्री विभीषण जी को प्रदान कर दी । अतएव कविकुल भूषण सन्त शिरोमणी गोस्वामीजी महाराज कहते हैं कि अरे मन ! अगर सब भांति के सकल सुख चाहते हो तो श्रीरामजी का भजन करो, संसार के सभी निरर्थक कामों का त्याग कर दो। भगवान श्रीराम तेरे सभी काम पूर्ण करेंगे क्योंकि वे कृपा के निधान हैं ।

इसीलिए आज भी रामानन्दीय संत जन सर्वाधिक उदार होते हैं, क्योंकि उपास्य देव के दिव्य गुण उपासक में अवश्य आ जाते हैं । भगवान रामानन्दाचार्य जी जैसे महान उदार आचार्य के पदार्पण से भारत राष्ट्र में एक बार पुनः समता, परस्पर प्रेम की स्थापना हुयी थी । मानव मात्र को श्रीराम भक्ति का, ईश्वर शरणागति का सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ और मानवता चमक उठी ।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज

उसी परम पावन अनादि वैदिक श्रीसम्प्रदाय के २३ वें आचार्य जगदगुरु रामानन्दाचार्य पांच महाकाव्यों के प्रणेता वेदोंपनिषद ब्रह्मसूत्र पर प्रस्थानत्रय भाष्यकार शताधिक महाप्रबंधों के रचयिता विशिष्टाद्वैत दर्शन के लेखक ब्रह्मसूत्र पर वैदिक भाष्य के रचयिता युग पुरुष, युगद्रष्टा पूज्यपाद श्री स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज थे जिन्होंने सनातन धर्म विरोधियों तथा श्रीरामानन्द सम्प्रदाय विरोधियों से ३६ शास्त्रार्थ कर तथा उज्जैन के ऐतिहासिक शास्त्रार्थमें विजयश्री प्राप्त करके श्रीवैष्णव धर्म की अपूर्व सेवा की थी ।

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय (श्रीसम्प्रदाय) के रूप में आज जो प्रफुल्लित एवं प्रमुदित है एवं अपनी गौरव गाथा से सम्मानित तथा गौरवान्वित है, यह तमाम प्रताप जगदगुरु रामानन्दाचार्य पूज्यपाद स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज का ही है । आचार्य चरणों ने स्वतंत्र सूत्रों की भी रचना की है । जब उनकी शताब्दी कर्णावती की पावन भूमि टागोरहाल में मनाई गई थी तब संन्यासी जगत के मूर्धन्य मनीषी षड् दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी भागवतानन्दजी महाराज विद्वत सभा को सम्बोधित करते हुए कहा था कि श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज के वैदिक भाष्य जैसा भाष्य अन्य किसी ने आज तक नहीं किया है, श्रीस्वामी जी एक लोकोत्तर महापुरुष हैं जिन्होंने व्यासजी के वाद प्रथम वार सूत्रों की रचना की है । ज०गुरुरा० स्वामी

भगवदाचार्य जी महाराज के पावन इतिहास को कभी भी मिटाया नही जा सकता है। सत्य को कभी असत्य से मिटाया नहीं जा सकता है। सत्य सर्वदा सूर्य की भाँति प्रकाशित ही रहता है। अतएव उनका बिशुद्ध इतिहास श्रीरामानन्दीय संतों के पावन हृदयाकाश में सर्वदा के लिए सूर्य के समान देदीप्यमान है और रहेगा। ज०गु०रा० स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी महाराज ने अनन्य रामोपासना समाज को राष्ट्र को एवं जन-जन को बताई। आपने कहा कि—

राममंत्रः सदाराध्यः सत्पदस्याभिलाषिभिः।
धर्ममर्थमथो कामं मोक्ष चासौ प्रदास्यति ॥ (सन्मार्ग दी० २५)

सत्पथ का अनुसरण करने वाले साधकजन चारों पदार्थों के प्रदाता श्रीराममन्त्र की आराधना करके परम पद को प्राप्त करते हैं। पूज्यपाद आचार्य श्री ने राममन्त्र की परम पावन महिमा का **सन्मार्ग दीपिका** नामक ग्रन्थ में बड़ा सुन्दर बर्णन किया है। श्रीचरण आगे लिखते हैं कि—

हे मंत्रराज ! आप में जो छः अक्षर हैं वे षट् विकारों का नाश करके साधक को परमपद प्रदान करते हैं।

पूज्य श्रीचरणों ने श्रीगुरुदेव के महत्व को भी उसी ग्रन्थ रत्न में बताया है कि—

गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुः सर्वार्थ साधकः।
गुरुरग्निश्च दुःखानां सर्वथैव विदाहकः ॥ (सन्मार्ग दी० ४५)

और भगवान श्रीरामजी की महिमा का वर्णन करते हुये आपने आगे कहा है कि—

राम एव परोधर्मः राम एव यमः रामः ।
रामः प्राणो जगन्नाथ इति ध्यायन्हि शं ब्रजेत ।। (स०दी० ९७)

ऐसे सैकड़ों स्तोत्रों की रचना करके आचार्य चरणों ने भगवती श्रीजानकीजी तथा भगवान् राम के परम कृपा के पूर्ण अधिकारी बने थे । इनके बाद जगद्गुरु रा० पूज्य स्वामी शिवरामाचार्यंजी महाराज ने श्रीहरिकृपा भाष्य की रचना की थी जो उनके रहते प्रकाशित न हो सका और न उनके बाद वह अनुपम भाष्य मिल ही पाया । आप जब तक इस धरातल पर विराजे थे तब तक सतत सनातन धर्म की सेवा में संलग्न रहे । आप षड्दर्शनाचार्य और परम संत थे। आपने ही **श्रीराम जन्मभूमि न्यास** की स्थापना की । श्रीराम जन्मभूमि उद्धार के लिए आपने सतत संघर्ष किया परन्तु दुर्भाग्य से आपका एकाएक साकेत गमन हो गया तब गत प्रयाग कुम्भ महापर्व पर २६ जनवरी के दिन आपके रिक्त पद पर श्रीअवध के जाने माने विद्वान परम श्रीरामनिष्ठ स्वामी श्रीहर्याचार्यजी महाराज को चार सम्प्रदाय के विशाल सभा खण्ड में भेष ने जगदगुरु रामानन्दाचार्य पद पर अभिषिक्त किया । आप श्रीसम्प्रदाय के २५ वें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही श्रीसम्प्रदायके परम पावन रहस्यों के प्रचार-प्रसार में संलग्न हो गये ।

आचार्यश्री द्वारा श्रीसम्प्रदाय की सेवा

जगदगुरु रामानन्दाचार्य पूज्यपाद हर्याचार्यजी महाराज श्रीरामानन्दाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही भूतपूर्व आचार्य

श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज द्वारा रचित **श्री सम्प्रदाय समयः** पर हरितोषणी हिन्दी टीका करके अपने पूर्वाचार्यश्री की दिव्यकीर्ति को देदीप्यमान बनाया । तत्पश्चात **श्री सम्प्रदाय मंथन नामक** बृहद ग्रन्थ का प्रकाशन कर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के परम पावन सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाने का उत्तम प्रयास किया । जिसमें पन्ने-पन्ने पर श्री सम्प्रदाय के आराध्य भगवान् श्रीराम तथा स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराज तथा श्रीसम्प्रदाय के दिव्य तत्वों का निरूपण भरा पड़ा है । पुनः आप गीता के द्वादश अध्याय भक्ति योग तथा ईशावास्योपनिषद् और पंचमुखी हनुमत् कवच पर सुन्दर भाष्यों का प्रकाशन किया जो एक प्रकांड विद्वान से लेकर हमारे जैसे साधारण संतों के लिए मननीय पठनीय तथा चिंतनीय पवित्र ग्रन्थ रत्न हैं । हनुमत् कवच जो प्रत्येक संत के लिए उपासना का संबल है, उस पर रहस्य मय भाष्य लिखकर आपने श्रीसम्प्रदाय पर बहुत बड़ा उपकार किया है । श्रीपंचमुखी हनुमत कवच पर उपासना परक हिन्दी भाषा भाष्य अति सरल शैली में यह पहला भाष्य है ऐसा मेरा विनम्र मत है । इससे पूर्व इतना सरल सुन्दर श्री हनुमत चरित्र पर भाष्य मैंने कभी नहीं देखा है ।

वेदों में अवतार रहस्य

अयोध्या निवासी अनन्य श्रीसीताराम पदारविन्द निष्ठ स्वामी सीताशरणजी महाराज के आग्रह से आचार्य चरणों ने उक्त ग्रन्थ का निर्माण किया, जिसमें वेदों के प्रमाण देकर श्री

वैष्णवों के आराध्यों का सुन्दर प्रतिपादन है। इस ग्रन्थ के ४० पृष्ठ से लेकर श्रीरामावतार तथा श्रीअवध श्री सरयू जी आदि का वेद मंत्रों का उत्तम प्रमाण देते हुये यह सिद्ध किया गया है कि वेदों में केवल निर्गुण स्वरूप का ही वर्णन नहीं है अपितु सगुण साकार ब्रह्म का तथा भगवत् अवतारों का भी विशद वर्णन भरा पड़ा है। अब श्रीचरण ब्रह्मसूत्र का भाष्य प्रकाशन करने जा रहे हैं। इसलिए आप प्रस्थानत्रयी भाष्यकार हैं और सच्चे अर्थ में आपने जगदगुरु पद को सार्थक किया है।

आचार्यश्री का काम है अनिष्ट का परिहार करना, और इष्ट का प्रचार-प्रसार करना। मेरे मत से वह कार्य जगदगुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्यजी महाराज ने निष्कामभाव से किया है। आप मान अभिमान रहित धर्माचार्य हैं, और सरलता सज्जनता बैष्णवता के समस्त सदगुणों से समलंकृत महापुरुष हैं। अगर पूर्वाग्रह को छोड़ा जा सके तो अवश्य सत्य का दर्शन होगा ही। एक कवि ने बड़ा सुन्दर लिखा है कि—

दुई का परदा हटा दिया, तो एकताई नजर आई।
न बाबा नजर आया हैं, न बाई नजर आई है॥

विवेक बुद्धि से अगर हम विचारने लगें तो अवश्य हम समता प्रेम के मार्ग में अग्रसर हो सकते हैं। यथा—

संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि विकार

अतएव जगदगुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्यजी महाराज द्वारा किये गये समस्त भाष्य और दिव्य साहित्य श्रीराम परत्व

एवं श्रीसम्प्रदाय परत्व है जिसकी विद्वानों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। तुरकी से श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित प्रवर श्रीवैदेहीकान्तशरणजी महाराज दर्शनकेशरी ने मुझे एकपत्र में लिखा था कि श्रीसम्प्रदाय मंथन श्रीवैष्णवोंके लिए अमृततुल्य है। अतःश्रीचरणों द्वारा रचित यह अनुपम साहित्य पूज्यपादगोस्वामी जी की भाँति सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय तो है ही साथ-साथ **"बुध विश्राम सकल जनरंजनि"** भी है। इसमें किञ्चित मात्र संदेह नहीं है। इस दास की तो श्रीचरणों में निर्मल निष्ठा इसलिए है कि श्रीचरण अनन्य श्रीसीताराम पदारविन्द निष्ठ महापुरुष हैं। आपकी वाणी और लेखनी से श्रीराम भक्ति झरती है। भक्ति प्रपत्ति के पावन रहस्यों को आचार्य चरण हृदयगम्य वर्णन करते हैं। श्रीभरत चरित एवं हनुमत् चरित आपके श्री मुख से श्रवण करना यह तो जीवन का अमूल्य लाभ है ऐसा दास का विनम्र मत है। श्रीचरणों के हृदयमें श्रीभरत चरित का वर्णन करते–करते करुणा का सागर उमड़ पड़ता है।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद गद गिरा नयन बह नीरा।।

यह अक्षरशः आपके जीवन में पाया जाता है। इतिशुभम्

।। जय श्रीराम ।।

श्रीखाकी बापू

रामसकलदास शास्त्रिणा लिखिता जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
श्रीस्वामि हर्याचार्य सत्कीर्तिः

"श्री सम्प्रदाय समयः" सुन्दरः सर्व संमतः ।
श्री भगवदाचार्येण निर्मितः सुखदः सदा ॥१॥
हर्याचार्यं जगद्गुरुर्यतिपतिः श्री रामचन्द्रप्रियः,
विद्या वारिनिधिः सरोजनयनः भक्तिप्रियः पावनः ।
श्री सीतावर पादपङ्कजमतिः काषाय वेषः सदा,
टीकां वै "हरितोषिणीं" च कृतवान् ग्रन्थस्य तस्याद्रुहाम् ॥२॥
मन्थनं रचितं येन लोक मङ्गलकारकम् ।
सुन्दरं सुखदं श्रेष्ठं सन्ततं ते नमो नमः ॥३॥
गीताभाष्यं सुरम्यञ्च सन्मतिं जीवनं धनम् ।
आचार्येण कृतं पूतं मङ्गलं मुक्ति दायकम् ॥४॥
विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तः संमतः सरलस्तथा ।
ईशावास्यस्य भाष्यञ्च कृतं परम सुन्दरम् ॥५॥
अवतार रहस्यं तु भास्कर इव भास्करम् ।
सुस्पष्टं सुन्दरं श्रेष्ठं स्वाध्यायान्मुक्ति दायकम् ॥६॥
हनुमत्कवचस्यापि भाष्यं परम पावनम् ।
भुक्तिदं मुक्तिदं श्रेष्ठं आचार्येण कृतं शुभम् ॥७॥
ब्रह्मसूत्रस्य भाष्यञ्च वृत्तिं कृत्वा करोति यः ।
विद्यावतां वरिष्ठाय हर्याचार्याय ते नमः ॥८॥

रामानुरक्तं सगुणाभिरामं
संसारसारस्य च बोधकं तम् ।
भक्तिप्रियं वेदविदं वरेण्यं
आचार्यवर्यं सततं नमामि ॥९॥

* प्राथमिकम् *

सम्मानीय वेदान्तप्रियमहानुभावा: !

वेद सिद्धं ब्रह्मैव जगज्जन्मादिहेतुरिति वेदान्त सिद्धान्तः। तच्च विशुद्धं वा मायोपाधिकं वेति अन्यदेतत्। उपादानमपि ब्रह्मैव। श्री वेदव्यासस्य वेदान्तदर्शनमेतस्य निर्माणकालमद्यतः पञ्च सहस्राणि वर्षाणि व्यतीतानि। अस्मिन् वेदान्त दर्शने उपलब्धाऽनुपलब्धानि अनेकानि भाष्याणि वृत्तयश्च अभूवन्। विदितं भवतु, यन्मया वेदान्तदर्शनस्य व्याख्यानस्य कावश्यकता ज्ञातमस्योत्तरं त्वेतस्य भाष्यस्य अध्ययनत्वादेव भविष्यति। अस्य सर्वस्मात् प्राचीनं भाष्यं यदुपलब्ध मद्यवर्तते तत् स्वामि शङ्करा-चार्यस्यैव। तस्य कारणमस्ति यत आधुनिके खलु वैज्ञानिके युगे जगदभेदवादी वर्त्ते। कालान्तरे विज्ञानं तु स्वयमेव परिपूर्णब्रह्म रूपेण द्रष्टुमिच्छति। अस्य अभेदवादस्य मूलं तु ईश्वर वादे-ब्रह्मवादे-अनुस्यूतमस्ति। यदि ईश्वरः अस्वीकुर्यात् तर्हि अभेदवादः स्वतः शून्यत्वं गमिष्यति परन्तु वेदान्तदर्शनं तु ब्रह्म स्वीकरोति। एतस्मात् जीवेन सह ब्रह्मणो भेदस्य किंवाभेदस्य विचारं कर्त्तुमावश्यकं भवत्येव।

ब्रह्म द्विविधम्। अद्वैतं विशिष्टाद्वैतं चेति। विशिष्टाद्वैत-निर्देशेन सर्वं एव जीवब्रह्माभेदवेदिनः संग्रहीता वेदितव्याः।

श्रीवैष्णवाचार्यमतानुसारेण जगज्जीव ईश्वरश्चेति तत्व त्रयं स्वीकृतम्। "अजामेकाम्०" अस्मिन् मन्त्रे प्रकृति जीवपरमात्मा च अजत्वरूपेण कथ्यते। वैष्णव दार्शनिकानां मतैव ईश्वरैव परमतत्वं

विद्यते । असौ केनचित् उपाधिना उपहितं नास्ति । परमात्मनः श्रीविग्रहः सच्चिदानन्दमयः । छान्दोग्य उपनिषदि **अन्तरादित्य विद्यायां दिव्यमंगलमय** विग्रहस्य वर्णयन् वेदाः प्रतिपाद्यन्ते यत् सूर्यस्याभ्यन्तरे एको दिव्यपुरुषोवतर्ते । तस्य नेत्रं कमलमिव अस्ति । तस्य केशान्यपि दिव्यानि । नखात् शिखा पर्यन्तमसौ सच्चिदानन्दमयः **"अन्तरादित्ये हिरणमयः पुरुषो दृष्यते आप्रणखात्सर्वं एव सुवर्णः"** ईशावास्योपनिषद्यपि भगवतः कल्याणतमरूपस्य दर्शनं भवति । **"तत्ते कल्याणतमं रूपं पश्यामि"** इति वैष्णव-दार्शनिकानां मते "तत्वमसि" इत्यस्यार्थः । त्वं ब्रह्मात्मकोऽसि सर्वं जड़चेतनं यदा ब्रह्मात्मकमस्ति, तर्हि श्वेतकेतोपि ब्रह्मात्मकं भवितुं सुतरां सिद्धमस्ति । अनेन प्रकारेण अद्वैत-विशिष्टाद्वैत-दर्शनयोर्मध्ये अनेके भेदाः सन्ति ।

ईश्वर निरूपणम्—तददृट शक्तेः नामीश्वरो यः समस्तसृष्टि रक्षा प्रलयादीनामादि कारणमस्ति । जिज्ञास्यं तद्ब्रह्म इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातुरिश्वानमाहुः" इति मन्त्रे दिव्यैश्वर्यं विशिष्ट त्वादिन्द्रत्वं दीनेषु स्निग्धत्वान्मित्रत्वं वरणीयत्वात्पाप-शापतापतापकत्वाद्वावरुणत्वं सर्वेषां मुपासकानां साशाभिलाष पूरकत्वात्सुपर्णत्वं सर्व सृष्टि निगरणसामर्थ्यवत्त्वात्तल्लीनात्मनीन-जनमानस्त्यानस्तावकत्वाद्वा गरुत्मत्वं सर्वनियामकत्वाद्यमत्वं सर्व-विकारावकार पूर्वकाधिकारावाप्त संस्कार सत्कारवतां भक्तिमतां हृदयेषु वर्धनशीलत्वं चेत्यादि विशेषाणां योग्यता ब्रह्मण्येव ।

ईश्वरस्त्वनन्त एवास्ति । कथितमेतद्यद्देशावच्छिन्नं न भवेत्, कालावच्छिन्नं न भवेद्,वस्त्ववच्छिन्नञ्च न भवेत्तमनन्तं कथ्यते । देशस्य परिच्छेदत्वं तदानीं भवति यदा कश्चिद्वस्तु अमुकदेशे भवेदमुकदेशे च न भवेत्। भगवान्तु सर्वव्यापको वर्तते। अमुकदेशेयं नास्ति एवं वक्तुन्न शक्यते । अतोऽसौ देशावच्छिन्नत्वं नास्ति, एतस्मादनन्तः । यद्वस्तु कस्मिंश्चित्काले भवेत् कस्मिंश्चित्काले च न भवेत् तदासौ कालावच्छिन्नं कथ्यते । ब्रह्म तु नित्यं सर्वं व्यापकञ्चास्ति । नित्यवस्तुन इदं कथितुँ न शक्यते यदसौमुककालेऽस्ति अमुककाले च नास्ति । अमुककालेसीदमुकेकाले च नासीत् । अतो भगवति कालावच्छिन्नत्वं नास्ति, एतस्मादनन्तं कथ्यते । पदार्थमात्रं भगवतः प्रकारमस्ति, शरीरमस्ति । शरीरे शरीर्यवश्यमेव निवसति । भगवती श्रुतिः प्रमाणयति- "नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् ।" "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्" "स सर्वात्मा" "यस्यात्मा शरीरम्" यस्य पृथिवी शरीरम्" इत्यादिश्रुतयो भगवत अनन्तत्वे प्रमाणीभूतास्सन्ति ।

विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च विशिष्टे ब्रह्मणी । विशिष्टयोर्ब्रह्मणोर भेदमभेदो विशिष्टाद्वैतम् । द्विरुच्चार्यमाणं विशिष्टपदं विशिष्टत्वे आगच्छति। प्रथम विशिष्टपदं सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टब्रह्मपरकमस्ति तयोर्द्वयोरभेदः । अयमेवार्थो विशिष्टाद्वैतशब्दस्य । तस्यैव विशिष्टाद्वैतस्यसर्वे वेदाः प्रतिपादयन्ति । श्रीस्वामि रामानन्दाचार्यः सिद्धान्तमिमवर्धयत् । अस्मिन्सिद्धान्तेनन्तचिज्जडजगतश्च निखिलकल्याणगुणाकरः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् स्वप्रकाश विशिष्टश्च प्रभु— श्रीरामेवेश्वरः ।

अन्ये ये द्वैताद्वैतसिद्धान्तस्य स्थापकाः स्वामि मध्वाचार्य, विशुद्धाद्वैतवादस्य श्रीवल्लभाचार्यःनिर्विशेषाद्वैतस्य श्रीमच्छङ्कराचार्यः स्वाभाविकद्वैताद्वैतवादस्य श्रीनिम्बार्काचार्यश्चेत्यादयोऽऽचार्यास्सन्ति ते स्वस्वमतमवर्धयन् । तेषु सर्वेषु आचार्यवर्येषु अन्यतमा विलक्षणप्रतिभासम्पन्ना अस्माकं पूर्वाचार्याः श्रीस्वामि भगवदाचार्यजिः महाराजाः अभूवन्, ते महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनव्यासानन्तरं दर्शनविषयकं **"विशिष्टाद्वैतदर्शनम्"** नामकं सूत्रग्रन्थं ग्रथितवन्तः यत्र "परः श्रीरामः" (३/२/३) अर्थात् परत्वेन श्रीसीतानाथो रामः सिद्धान्तितः ।

अम्यपररामानन्दाचार्यकल्पा आसन्, यतो हि तेमहाभागा वेदप्रस्थानत्रयीनां भाष्यकारास्तथा शतशो ग्रन्थानां रचयितारोऽनुवादकाश्चासन् । एतद्दृष्ट्या मया स्वकोयेस्मिन्भाष्ये स्वामिपादानां भावं यथास्थाने स्थापितम् । श्रीस्वामिभिर्ब्रह्मसूत्रस्य वैदिकभाष्यमपि कृतमनुत्तमम् । तेन भाष्येण आचार्यजगत्सु नवीनाशैली संस्थापिताता । यतो हीदानीं यावत् कोप्याचार्यो ब्रह्मसूत्रमस्य वैदिकभाष्यं न कृतः । तस्मिन्कालेनं भाष्यं दृष्ट्वैव सर्वेऽऽश्चर्यचकिता अभूवन् । आयोध्यिकेन श्रीरुद्रभट्टेनोक्तं यत् श्रीस्वामि भगवदाचार्यमहं सम्यग्वेद्मि.असौ यत्किञ्चिदपि कथयति तत्प्रतिपादयितुमपि समर्थः । अलौकिकगतिः शास्त्रेषु आसीत् इत्थं पण्डितमन्यापि मन्यन्ते तान् ।

एतस्मात्सिद्ध्यति यद्भारतीय दर्शनस्य मुख्य तात्पर्य सन्निधिः प्राप्तिश्चेति वेदान्तदर्शनेऽस्मिन्नारम्भे एव सिद्धयति "अथातो

ब्रह्मजिज्ञासेत्यनेन । यस्य ब्रह्मणो जिज्ञासा तस्य किं स्वरूपम् ? "जन्माद्यस्य यतः" यस्मादुद्भव पालन प्रलयाश्चभवन्ति तद्ब्रह्मैव जिज्ञास्यम् । 'शास्त्रयोनित्वात्' इति तृतीयसूत्रेण परमात्मतत्व-सिद्धये शास्त्रमेव परमप्रमाणम् इति निश्चीयते । 'तत्तुसमन्वयात् (१/१/४) अर्थात् समस्त वेदान्तवाक्यानां समन्वयः परमात्मन्येव । ईक्षतेर्नाशब्दम्' इत्यस्माज्जगतः कारणं प्रकृतिर्नास्ति,अपितुईक्षणं इच्छाभवनञ्च परमात्मन्येवेति बहुभिः प्रपञ्चितम् ।

एतस्मिन्भाष्ये सरल संस्कृतभाषायां स्वकीयभावमुद्भावितं मया । एषा प्रेरणा कर्मवीरेत्युपाधिभूषितेन महामण्डलेश्वरश्री-रामकुमारदासेन प्रदत्ता । ब्रह्मसूत्रस्याशयं गभीरं कठिनञ्च विचार्य सरल हिन्दीभाषायां मधुरातिमधुरव्याख्यानं 'श्रीरामभक्ति भाष्य' रूपमस्माकं पटुशिष्यः श्रीरामदेवदासः कृतम् । यस्मात्सरल रूपेण समाजस्य समक्षे वेदान्तदर्शनमिदमागच्छेत् । प्रेसपुस्तिका-निर्माणंप्रूफशोधनकार्यञ्च श्रीरामदेवदासः कृतभूरिं परिश्रमः कृतः, अतो एषो धन्यवादपात्रः । यदि कुत्रचित् स्खलनं तत्सुधीजनास्माकं त्रुटिर्जानन्तु । यत्किञ्चित्प्रयासोऽनुरञ्जनं कर्त्तुं सफलो भविष्यति तर्हि अस्माकं महत्सौभाग्यं भविष्यति ।।इतिशम्।।

भवताम्–

काशीपीठाधीश्वरः

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामि हर्याचार्यः

* उपायनम् *

अम्भोज सम्भव मुखाम्बुज राजहंसी
वाल्मीकि कोकिलविलास वसन्त लक्ष्मीः ।
द्वैपायनाम्बुधि विजृम्भण चन्द्ररेखा
वाग्देवता विजयते कविकामधेनुः ॥

अयि विद्वत्तल्लज सुरभारती भारतीय संस्कृतिप्रकाश-प्रकाशित सुहृद्वृन्द महानुभाव !

अगाधकृपासुधासिन्धु श्रीसीतारामचन्द्र के पदपद्म पराग का परमलोलुप मत्तमनमधुप कैसा हठीला है, उसकी सौभाग्यलक्ष्मी कितनी प्रगल्भा है यह कोई समझ नहीं सकता । परम चपल-नयनों का उन्मीलन राजीव नयन तक सीमित रहता है । उन परम प्रियतम को रिझाने के लिये ही अपने को सँवारा करती है । वह साँवला भी तो नयन रसिक शिरोमणि है । मधुर-मधुर चितवन से जिसे एकबार देख लिया, अपने आजानुबाहुओं से समेटकर जिसे परिष्वङ्ग प्रदान कर दिया, कोटि काम कमनीय मुखारविन्द का जिसे दर्शन करा दिया, मानों तन–मन–धन सब कुछ लूट लिया । तभी तो बड़े बड़े त्यागी, विरागी, योगीन्द्र, मुनीन्द्र, यतीन्द्र, महेन्द्र जन्म-जन्म के लिये किङ्कर बनकर रह जाते हैं । अरसिकों के हृदय में विधाता ने यह भाव ही नहीं भरा ! किन्तु—

जेहिपर कृपा करहिं जिय जानी । कवि उर अजिर नचावहिं बानी

भारतीय संस्कृतिके उपासकों में सबसे प्रधान अर्चक श्रीराम मन्त्राचार्य पराशरनन्दन महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी प्रथम हैं। ब्रह्मनिःश्वासभूत वेदों का विस्तार करनेसे वे व्यास कहलाये। उन्हीं महनीय वेदों के भाष्यरूप अष्टादश पुराण, ब्रह्मसूत्र और पंचम वेदरूप महाभारत आज भी विद्यमान हैं। ये सभी ग्रन्थ अपौरुषेय कहे गये हैं, अतः न ईश्वर कर्तृक और न ऋषिकर्तृक ही माने जा सकते हैं। यथा—

निःश्वसितमेतद्यदृग् ... ...श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि।
(वृ०उ० ४।५।११)

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदाऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्। (वाजसनेयि ब्रा०उ०४।११।५)

इस प्रकार पुराण और इतिहास—महाभारत, वाल्मीकि-रामायण वेदव्याख्याओं के साधन कहे गये हैं। उक्त प्रमाण के अनुसार ब्रह्मसूत्र भी अपौरुषेय ही कहा जायेगा। व्यासजी ने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञासे इनका साक्षात्कारकर संग्रहीत किया है।

उपनिषद्—

मन्त्र संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक इन तीनों ब्रह्म प्रतिपादक शास्त्रों के रहस्य को उपनिषद् कहा गया है। इनकी संख्या १०८ कही जाती है किन्तु आचार्यों ने प्रधान दशोपनिषद् ही माना है। यथा— ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और वृहदारण्यक।

उप+नि+षद्, उप और निस् उपसर्ग पूर्वक विशरण, गति और अवसादन अर्थ में षदलृ धातु से उपनिषद् शब्द सिद्ध होता

है । **उप समीपे नि:शेषेण सीदयति इति उपनिषद्** । अर्थात् जो सांसारिक पाप, ताप और माया तथा जन्म-मृत्यु रूप क्लेश से निर्मुक्त कर भगवान् के चरणशरणवरणरूप मोक्षकी प्राप्ति करा दे, वह उपनिषद्विद्या है।

गीता–

गीता में मातृतुल्य वात्सल्य है, अतः इसका स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग हुआ है । संसार सागर से पार होने का सरल साधनोपदेश इसमें प्राप्त होता है । **सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः । पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्** ।। यह उपनिषदों का भी सारांश है । महाभारतके भीष्म-पर्वके पचीसवें अध्याय से इसका उपदेश हुआ है ।

ब्रह्मसूत्र–

ब्रह्मसूत्र का अर्थ है - ब्रह्म के निर्विशेष और सविशेष रूपों को सूत्ररूप में अनुबद्ध करना । **बृंहति बृंहयति च तद्ब्रह्म** अर्थात् जो उदार शिरोमणि स्वयम् व्यापक होकर भी अपने आश्रितजनों को महान् बनाता है, वह ब्रह्म है। उस ब्रह्म के लक्षण,स्वरूप और अनेक प्रकार के लोकोपकारी चरित्रों को बीज रूप में कथन को ब्रह्मसूत्र कहा गया है । यथा—

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम् ।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।

इस प्रकार उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र इन ग्रन्थत्रय को आचार्यों ने प्रस्थानत्रय की संज्ञा प्रदान की है । उपनिषद्

श्रुतिप्रस्थान, गीता स्मृतिप्रस्थान और ब्रह्मसूत्र को उत्तरमीमांसा, सूत्रप्रस्थान अथवा न्यायप्रस्थान कहा गया है । **अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा** से ही इसका मंगलाचरण होता है । ब्रह्म के चतुष्पाद् वर्णन अथवा पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के साधन होने से ४ पादों में इसका वर्णन है, जिसमें प्रथमपाद आपके समक्ष प्रस्तुत है । शंकराचार्य से लेकर आनन्दभाष्य और श्रीजानकी कृपा भाष्य तक विविध दर्शनों के रूप में इसका प्रचार-प्रसार हुआ है । ब्रह्मसूत्र के इन सभी भाष्यकारों ने प्राय: सैद्धान्तिक प्रमाण उपनिषद् श्रुति को प्रधान माना है ।

विक्रम की इस शताब्दीमें जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्य जी महाराज ने भी **"श्रीरामानन्द भाष्य"** नामक ब्रह्मसूत्र पर उसी शैली में भाष्य लिखा । उन्हें उपर्युक्त सभी ब्रह्मसूत्र भाष्यों में मूल श्रुति वाक्यों के अभाव का अनुभव हुआ, अत: 'ब्रह्मसूत्र वैदिकभाष्यम्" नामक दूसरा भाष्य लिखा, सभी भाष्यों में इस भाष्य को अपूर्वता सिद्ध हुई ।

वर्तमान वैज्ञानिक युग है । इस युग की सर्व सामान्य जनता प्राय: इन ग्रन्थों के अध्ययन और श्रवण से वञ्चित होती जा रही है, दुरूह होने के कारण । अत: अधिक से अधिक सरल भाष्यों की आवश्यकता वर्तमान समाज को है । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके रामचरितमानस आदि ग्रन्थ सरस और सरल होने से वर्तमान युग में अधिक उपयोगी सिद्ध हुये । देश, काल और समाजके अनुसार भाष्यशैली की भी आवश्यकता

होती है । इसका अनुभव हमारे सद्‌गुरुदेव अनन्त श्रीविभूषित जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराज को हुआ । आस्तिक समाज चिन्तकों और जनता जर्नादन की यह माँग कि स्वामीजी ! यदि वेदान्त को भी श्रीरामचरितमानस आदि ग्रन्थों से जोड़ दिया जाय तो इससे समाज को बहुत लाभ होगा और अपने आर्ष ग्रन्थों से परिचय भी होता रहेगा। समय के अनुसार ग्रन्थों को भी सरल होना चाहिये, अतः इस "ब्रह्मसूत्र श्रीहरिभाष्म्" की रचना हुई । इसकी उपादेयता क्या होगी,संतवृन्द, विद्वद्‌वृन्द महानुभाव यह स्वतः निर्णय करेंगे ।

श्रीआचार्य चरणों की आज्ञा से यह दास भी "श्रीराम-भक्तिभूषण भाष्य" नामक हिन्दी रचनामें प्रवृत्त हुआ । विद्यार्थी जीवन से ही आचार्यश्री के सान्निध्य में रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त रहा है, अतः अध्ययन कालमें जो श्रवण किया, उसी का किंचित् अंश इस भाष्य रूप में दृश्य है । स्खलन होना जीव का सहज स्वभाव है, अतः जो इस भाष्य की समीचीनता है, वह मेरे सद्‌गुरुदेव की है और यत्किञ्चिद् दोष मेरा ही होगा। सागर में एक बिन्दु जोड़ने का यह मेरा प्रयास तभी सार्थक होगा, जब सहृदय पाठक महानुभाव मुझे प्रोत्साहित करेंगे । सादर जय श्रीसीतारामजी । श्रीवैष्णवचरणचचरीको—

—रामदेवदासः

श्रीरामोविजयतेतराम्

प्रकृत्येषा सीता पुरुषपदवाच्यो रघुपतिः,
परब्रह्मस्वामी सकलजननामी त्वमसि वै ।
त्वमेवास्मिंल्लोके विधिहरिहराद्यैक सविता,
सदासेव्यो रामो हृदि मम सवामो विहरताम् ।।१।।

जगज्जन्मादीनां परमकरुणं कारणपरं,
जनानां भीतानां सकलसुखदं लोकरमणम् ।
कलेशं कालेशं कलिकलहकालं नृपवरं,
रमारामं श्यामं नमति नवरूपं रघुवरम् ।।२।।

वेदान्त वेद्यं खरदूषणारिं मायामनुष्यं सुरराजराजम् ।
सूक्ष्मस्वरूपं कमनीयमूर्ति नमामि रामं चिदचिद्विशिष्टम् ।।३।।

वेद वेदान्तमालोड्य ब्रह्मसूत्रकृतं पुनः ।
पाराशरमहं वन्दे राममन्त्र प्रचारकम् ।।४।।

पूर्वाचार्यान्नमस्कृत्य रामानन्द पथानुगान् ।
हरिभाष्यं करोमीह रामनामार्थ सिद्धये ।।५।।

❀ ब्रह्मसूत्र वेदान्त दर्शने प्रथमोऽध्यायः प्रथमः पादः ❀

* अथ जिज्ञासाधिकरणम् *

हरिभाष्यम्-

जगन्नियन्ता जगदाधारो ब्रह्म-ईश्वरपरमेश्वररामकृष्णादि-शब्दैश्चाधुनैकमेवतत्त्वमवज्ञायते । केचन ब्रह्मतत्त्वमेव न स्वीकुर्वन्ति । संसारेऽस्मिन् सर्वः स्वकृतं स्वार्जितं च भुङ्क्ते । तस्यान्यः कश्चन जीवयिता नास्ति ।

प्रसूनाञ्जलिः

वेदान्तवेद्य पुरुषं जगदेकनाथं नारायणादि जनकञ्जनतापहारम्।
ज्योतिः परं परमकारणमादिरूपं सीतापतिं मनुजरूपमहं भजामि ।।१

श्रीराघवेन्द्रचरणाम्बुजभृङ्गराजं विद्यावलादिपरिपूरितवातजातम्।
भक्ताग्रगण्यदनुजानलमाञ्जनेयं भावप्रसूनसहितं हृदि भावयामि ।।२

शाण्डिल्यवंशसरसीरुहभव्यभालं तेजःप्रतापसमलङ्कृतस्वाम्युदारम्।
श्रीरामबालकपदाकृतिधार्यमाणं ह्याचार्यवर्यहरिपादमहं नमामि।।३

भक्तिभूषणभाष्यञ्च करोम्येतद्यथार्थकम् ।
वाग्घरिं सद्गुरुं नत्वा येन रामः प्रसीदताम् ।।४।।

सीतानाथ समारभां रामानन्दार्य मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।५।।

भक्तिभूषण भाष्य–

जगन्नियन्ता, जगदाधार, ब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर, श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि शब्दों द्वारा निरन्तर एक ही तत्त्व का ज्ञान होता है । कुछ लोग (ब्रह्म) तत्त्व को ही नहीं स्वीकार करते हैं । लोक में सभी प्राणी स्वकृत और स्वार्जित कर्मफल का भोग करते हैं ।

यहाँ ब्रह्म शब्द विशेष्य और जगन्नियन्ता, जगदाधार आदि शब्द उसके विशेषण हैं । सर्वशक्तिमान् ब्रह्म अनेक कल्याणमय चरित्रों द्वारा सम्पूर्ण जड़ चेतन जीवों पर अनुशासन करता है,

अतः वह जगत् का नियन्ता कहा गया है। ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी ने चित्रकूट की सभा में निर्देश दिया है—

विधि हरि हर ससि रवि दिसिपाला।
मायां जीव करम कुलिकाला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई।
जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि विचार जिय देखहु नीके।
राम रजाइ सीस सबही के॥

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड की रचना, पालन और संहार के कर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु और शंकरजी जिनकी कृपा का अवलम्बन प्राप्त करते हैं, और भी जितने शक्तिमान कहे गये हैं, उन सभी के आधार श्रीराम ही कहे गये हैं—

विधिहिं विधिता हरिहिं हरिता सिवहिं सिवता जो दई।
सोइ जानकीपति मधुरमूरति मोदमय मंगलमयी॥

उक्त वचन से विपरीत अन्य अनेक नास्तिक दर्शन भी हैं, जो ब्रह्मसत्ता नहीं स्वीकार करते हैं। वे केवल अपने पुरुषार्थ अथवा बाहुबल से उपार्जित कर्मफल तक ही सीमित रहते हैं। मीमांसा दर्शन में कर्म को ही परमपुरुषार्थ कहा गया है।

इस प्रकार शैव मतावलम्बी जिसे पशुपति-शिव, ज्ञानाश्रयी वेदान्तीजन जिन्हें सकल उपाधि से शून्य निर्विशेष ब्रह्म कहते हैं। पञ्चदेवोपासना का यही रहस्य है। नैयायिकदर्शन में ब्रह्म को कर्त्तातत्त्वरूप में, मीमांसामें कर्मरूपब्रह्म, जैनदर्शन में अर्हन्

रूपब्रह्म, बौद्धदर्शन में बुद्ध रूप ब्रह्म की उपासना करते हैं। वस्तुतः वही त्रैलोक्यके नाथ श्रीहरि सभीकी वाञ्छापूर्ति करते हैं।

यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमांसाकाः,
सोयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथोहरिः॥

(हनुमन्नाटक, मं०)

हरिभाष्यम्-

जगदपूर्णम्। तन्निर्माता कोपि नास्ति। यत्कश्चित् तस्य निर्माता कोपि वर्तते एव तर्हि सोऽपि अपूर्णेव। अपूर्णस्य संसार-स्याखिलस्य कर्त्ता सर्वज्ञो भवितुं नार्हति। अपूर्णसंसारदर्शनेन तन्नि-र्मातुरपि अपूर्णत्वमेवगम्यते। अतो न कोऽपि जगतःकर्ता,निर्माता वा, अतस्त्यक्तव्य एव इति एकेषां मतम्। जीवकृतपुण्यपाप-कर्मणामस्त्येव फलप्रदायकश्चेतीश्वरवादिनः।

जगत् अपूर्ण है। इसका निर्माता कोई नहीं है। जो भी कोई इसका निर्माता सिद्ध ही है तो वह भी अपूर्ण है। अपूर्ण अखिल संसार का कर्त्ता सर्वज्ञ नहीं हो सकता। इस अपूर्ण संसार के दर्शन से इसके कर्त्ता की अपूर्णता निश्चित हो जाती है। अतः इस जगत् का कोई कर्त्ता वा निर्माता नहीं है। अतएव उसकी चर्चा ही त्याग देनी चाहिये, यह किसी का मत है।

परन्तु ईश्वरवादी कहता है, जीवों द्वारा सम्पादित पुण्य और पापरूप कर्मों के फलों का प्रदाता कोई अवश्य है। जन्यं

दृष्ट्वा जनकः कल्प्यते' के न्याय से जन्य को देखकर जनक की कल्पना अवश्य होती है, उसी प्रकार ईश्वरसिद्धि स्वतः सिद्ध है।

हरिभाष्यम्-

अनेन प्रकारेण ब्रह्म स्वीकृत्यास्य ब्रह्मसूत्रदर्शनस्य प्रमाणम् । तात्पर्यमेतत् वेदाध्ययनात् ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या ।

असारे खलु संसारेऽस्मिन्नेतेऽनन्तजीवाः केन प्रकारेण शान्तिं लभेयुरतो हेतोः ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या । अत एवास्य ब्रह्मसूत्रवेदान्तस्य प्रथमं सूत्रमिदं वर्तते---

इस प्रकार ब्रह्म की सत्ता स्वीकार कर इस ब्रह्मसूत्रदर्शन का प्रमाण उपस्थित है । तात्पर्य यह है कि वेदाध्ययन पूर्वक ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये । इस असार संसारमें अनन्त जीव कोटि किस प्रकार शान्ति की प्राप्ति करे, इस हेतुसे ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये इसीलिये इस ब्रह्मसूत्र वेदान्तका प्रथमसूत्र उपस्थित है ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥१।१।१॥

हरिभाष्यम्-

सूत्रेऽस्मिन् ब्रह्मणो विषये विचारयितुँ प्रतिज्ञा क्रियते । ब्रह्मलक्षणं स्वरूपञ्च विवृणुते । उपक्रमोऽथशब्देन क्रियते ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥१।१।१॥

इस ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म के विषय में विचार हेतु भगवान् श्रीबादरायण ने प्रतिज्ञा की है और ब्रह्मलक्षण तथा स्वरूपका विवरण प्रस्तुत किया है । इस प्रतिज्ञासूत्र में अथ शब्द द्वारा उपक्रम कहा गया है ।

अथ शब्दोऽत्र मंगलवाचकः । अथ शब्दं दृष्ट्वा वेदानां स्मृतिर्जायते, कियत् "ॐकारश्चाथशब्दश्चपुराब्रह्मणोकण्ठान्निर्गतौ एतस्मान्माङ्गलिकावुभौ ।" ऋषिभिः प्रायेण विघ्नविघाताय ग्रन्थारम्भेदथ शब्द उक्तः । नन्वथ शब्दस्य पृथगुच्चारणं कर्तव्यम् । मंगलवाचकस्य पृथक् सूत्रमस्तु । द्वितीयं सूत्रम् 'अतो ब्रह्मजिज्ञासा इति, तन्न । अथ शब्दस्य अकारे ब्रह्मवाचको वासुदेवः श्रीरामः सङ्गच्छते । वेदाचार्यस्य भगवतो व्यासस्य हृदीदं तत्त्वं विलसति अतो हेतोः ब्रह्मतत्त्वंरामावतारतत्त्वञ्चास्मिन् सूत्रे प्रतिष्ठितम् । अथातो धर्मजिज्ञासा इति जैमिनिः । अथशब्दानुशासनम्, अथ योगानुशासनमिति पतञ्जलिः । अथातो धर्मं व्याख्यास्याम इति कणादः । अथ त्रिविधदुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थं इति-कपिलः । एवं प्रायेण सर्वत्रानेन शब्देन प्रारम्भः सूच्यते ।

अथ शब्द यहाँ मङ्गलवाचक है । अथ शब्द को देखकर वेदों की स्मृति हो जाती है । क्योंकि ॐ कार और अथ शब्द आदि कवि ब्रह्माजी के कण्ठ से निर्गत हैं, अतः वे मांगलिक कहे गये हैं ।

ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥ (अग्नि पुराण)

अतः ऋषियों ने इसे मांगलिक मानकर विघ्नविनाश हेतु प्रायः ग्रन्थारम्भमें अथ शब्द का प्रयोग किया है । यदि कोई प्रतिवादी कहता है–मंगलवाचक अथ शब्द का पृथक् सूत्र होना चाहिये । मंगलवाचक का पृथक् सूत्र होना चाहिये और द्वितीय

सूत्र 'अतो ब्रह्मजिज्ञासा' कहना चाहिये, यह तर्क समीचीन नहीं है।

अथ शब्द का मुख्य हेतु यह है कि अथ शब्द के अकार के उच्चारण से ब्रह्मतत्त्व वासुदेव श्रीरामतत्त्व का बोध होता है। एकाक्षरी कोष में "अकारो वासुदेवः स्यात्" कहा गया है। वेदों के आचार्य श्रीव्यासजी के हृदय में श्रीरामतत्त्व पूर्णरूपसे विलसित है। इसलिये ब्रह्मतत्त्व अर्थात् श्रीराम आदिका अवतार-तत्त्व इस सूत्र में प्रतिष्ठित है।

अन्य दार्शनिक ऋषियों ने भी अपने ग्रन्थ के आदि में अथ शब्दका प्रयोग किया है। यथा—"अथातो धर्मजिज्ञासा" का प्रयोग महर्षि जैमिनि ने मीमांसादर्शनमें किया है। 'अथ शब्दानुशासनम्' व्याकरण महाभाष्यमें तथा 'अथ योगानुशासनम्' का प्रयोग महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में किया है। 'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः' का प्रयोग महर्षि कणाद् ने वैशेषिकसूत्रमें किया है। 'अथ त्रिविध०' आदि का प्रयोग भगवान् कपिल ने सांख्यसूत्र में किया है, इत्यादि।

सभी आचार्यों का यही सिद्धान्त है कि जो मैं जानता हूँ, वही साधु है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि ब्रह्म जिज्ञासा का विषय नहीं है। जिज्ञासाका विचार में तात्पर्य है। विचार ही प्रधान होता है। विचार का अर्थ विवेक होता है, अतः विवेक पूर्वक ब्रह्मजिज्ञासा का तात्पर्य है—ब्रह्मलक्षण और स्वरूप का विचार करना, अतः द्वितीय सूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' कहा गया है।

सर्वेषामाचार्याणामयमेव सिद्धान्तो यन्मया बुध्यते तत्साधु। ब्रह्मजिज्ञासाविषयं नास्ति, जिज्ञासाया विचारे तात्पर्यम् ॥ ब्रह्मणो जिज्ञासा–ब्रह्मजिज्ञासा इति कर्मणि षष्ठी। ब्रह्मकर्मकजिज्ञासेत्यर्थः।ब्रह्मजिज्ञासाइत्यस्यब्रह्मलक्षणस्वरूपयोर्विचार इत्यर्थः। एतस्यात् 'जन्माद्यस्य यत' इतिद्वितीयं सूत्रमस्ति।

अत इति शब्दः'पञ्चम्यास्तसिल्' इति पाणिनिसूत्रेणानन्तर्ये पञ्चमी। अनन्तरं ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या। अत्र जिज्ञास्यते–कस्मादनन्तरमिति ? उत्तरयति–वेदाध्ययनानन्तरमिति। अर्थात् गार्हस्थ्यस्य समाप्तेरनन्तरम्।'आश्रमादाश्रमंगच्छेदिति हि न्याय्यम् ब्रह्मविषयकं चिन्तनं वैराग्यस्य काञ्चिदवस्थां दर्शयति। चतुर्थे आश्रमे विरागपूर्वकेण संसारभावनाः संन्यस्य यतिर्भूत्वा ब्रह्मध्यानं कुर्यात् इति कल्याणकरः पन्थाः। वेदाध्ययनानन्तरं ब्रह्मजिज्ञासेति-विधानं जीवने सम्यङ्न सङ्घटते। कथन्न घटते ? अध्ययनं न केवलं गुरूच्चारणानुच्चारणमेव। किं तर्हि? लिखितेषु मुद्रितेषु वा पुस्तकेषु दृष्ट्वाऽक्षराणि च संयोज्य पदपदार्थवाक्यार्थविशिष्ट-ज्ञानमध्ययनम्। अयमर्थः कस्माल्लभ्यते ? अध्ययन शब्दादेव। अधिकमयनमध्ययनम्। अयनं–ज्ञानम्। अध्ययनं विशिष्टज्ञानम्। वेदाध्ययनमित्यस्य वेदविषयकं विशिष्टज्ञानम् इत्यर्थः। कुतो लभ्यते? उच्यते-गत्यर्थकेण्धातोः अस्य सिद्धिर्भवति। प्राप्तिरूपोपि गत्यर्थः। मोक्षं गच्छति प्राप्नोति इतिवत्। नायमिण् गताविति धातुः। इङ् अध्ययने हि सः। सुन्दरम्। तथापि पुष्कलमध्ययनम-प्रयाससिद्धम्। अध्ययनाधिवये वेदानां विशिष्टज्ञानं भवति। अनेन को लाभः? उच्यते–गुरुकुलजीवने गुरुणा बहूपदिष्टं, बहुबोधितं

बहुदत्तम् । वेदेषु कर्मोपदेशो ज्ञानोपदेशोऽपि । अन्तेवासी यथा कर्मरहस्यं तथैवाध्यात्मज्ञानमपि लभते। तस्मात्कर्ममर्यादामतिक्रम्य ज्ञाननिरतो भवति। गृहशत्रु मित्रपुत्रकलत्रादि समग्रसंशयराशिं परित्यज्य तत्त्वज्ञानयोग्यतामुपपाद्य तत्त्वज्ञानाधिकारी भवति जीव इति सत्यं स्पष्टश्च पन्थाः ।

अब अतः पद का निरूपण करते हुये श्रीस्वामीजी महाराज का यहाँ यह मन्तव्य है कि इदम् सर्वनाम से 'पञ्चम्यास्तसिल्' इस सूत्र से जो 'तसिलन्त' अतः पद है, इसका तात्पर्य यह है कि अनन्तर (पश्चात्) ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये । किसके पश्चात् ? इस जिज्ञासा का समाधान करते हैं- वेदाध्ययन के पश्चात् अर्थात् गार्हस्थ्याश्रम के अनन्तर वानप्रस्थावस्था से एक आश्रम से दूसरे आश्रममें उत्तरोत्तर जाना चाहिये, यह शास्त्राज्ञा है । ब्रह्मविषयक चिन्तन वैराग्यकी विशिष्ट अवस्थाको दर्शाता है । चतुर्थ आश्रम की अवस्थामें विरागपूर्वक संसारकी भावना का त्यागकर यतिवेष धारणकर ब्रह्मध्यान करना चाहिये, यह जीवन का कल्याणकारी मार्ग है ।

वेदाध्ययन के पश्चात् ब्रह्मजिज्ञासा का विधान सामान्य रूपसे जीवनमें संघटित नहीं होता है । कारण यह है कि अध्ययन केवल शब्दों को कण्ठ कर लेना मात्र नहीं है । ऐसा क्यों ? लिखित अथवा मुद्रित पुस्तकों में वर्णित वाक्यों को हृदय में धारणकर और उसके प्रकृति प्रत्यय अर्थात् पदपदार्थ और वाक्य वाक्यार्थके विशिष्ट ज्ञानको अध्ययन कहते हैं । अध्ययन शब्द

का यही अर्थ है । अधिक ज्ञान को अध्ययन कहते हैं । अयन का अर्थ ज्ञान होता है । अतः अध्ययन का अर्थ विशिष्टज्ञान होता है। वेदाध्ययन का अर्थ है–वेदविषयक विशिष्टज्ञान ।

अयन शब्द का ज्ञान अर्थ कैसे हुआ ? समाधान–गत्यर्थक इण् धातुसे **अय्यते गम्यते प्राप्यते वेति अयनम्** यह सिद्ध होता है–'मोक्षं गच्छति, प्राप्नोति' की भाँति ।

यदि कोई यह कहे कि इङ् अध्ययने धातु से यह सिद्ध है तो इण् गतौसे साधनेकी आवश्यकता क्या है? इसका समाधान करते हैं कि पुनश्च अध्ययन शब्दमें अधिक यह विशेषण अप्रयास सिद्ध है । अधिक अध्ययन का अर्थ विशिष्टज्ञान ही होता है। पुनः प्रतिपक्षी कहता है–इस व्युत्पत्ति (अर्थ) से लाभ क्या है? उत्तर–लाभ क्यों नहीं है । गुरुकुलमें विद्यार्थी यह अनुभव करता है--आचार्यजी ने बहुत अध्ययन कराया, अधिक ज्ञान प्रदान किया, विशिष्टतत्त्व बोध कराया ।

वेदों में कर्मों का तथा ज्ञानका भी उपदेश प्राप्त है । अन्तेवासी जिस प्रकार कर्मरहस्य को उसी प्रकार अध्यात्मज्ञान को भी प्राप्त करता है। अतः कर्ममर्यादाका अतिक्रमणकर ज्ञान में निरत हो जाता है । इस प्रकार जीवकदम्ब गृह, शत्रु, मित्र पुत्र, कलत्र आदि समस्त संशय राशियों का परित्यागकर तत्त्व-ज्ञान की योग्यता को प्राप्त कर ब्रह्मतत्त्व ज्ञान का अधिकारी होता है, यह सत्य और स्पष्ट राजमार्ग है ।

वेदाध्ययनानन्तरमिति

वेदलक्षण–ज्ञान अर्थमें **विद्धातु** का प्रयोग होता है। **वेदयति इति वेदः** । वेदलक्षण को श्रीसायणाचार्यजी ने इस प्रकार कहा है–

इष्टप्राप्तिरनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः ।

अर्थात् इष्ट (शुभ) की प्राप्ति और अनिष्ट के निबारण के जो अलौकिक उपाय का ज्ञान करा दे, वह वेद है ।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्य जी महाराज के अनुसार वेदलक्षण इस प्रकार है—

वस्तुतस्तु ऋग्यजुः सामाथर्वान्यतमत्वं वेद इत्येव लक्षणं साधु ।

वस्तुतः ऋग्, यजुः, साम और अथर्व का अन्यतम वेद है, यही लक्षण साधु है ।

स्वरूप—ज्ञान के आधार अनादि अपौरुषेथ वेद भगवान् ही हैं । अज्ञात वस्तुओं के परम ज्ञापक हैं । आस्तिक जगत् की यही मान्यता रही है । अतः आर्यावर्त के ऋषि-मुनियों ने धर्म के निर्णय में वेदों को ही प्रमाण माना है । पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र और रामायण आदि इन्हींके अनुव्याख्यान है । विविध दर्शन इन्हींका पोषण करते हैं,जैसे अग्निमें धूम साहचर्य नियम से व्याप्त रहता है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतयदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि । (बृ०उ० ४।५।११)

यहाँ व्याप्य-व्यापकभाव सम्वन्ध तथा जड़ चेतनका सम्बन्ध नहीं अपितु षष्ठीके कथन से ब्रह्म और वेदोंका स्व स्वामिभाव सम्बन्ध है । **निःश्वसितम्** इत्यादि । यहाँ विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध है ।

जाकी सहज स्वाँस श्रुति चारी । रामचरितमानस
श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् । कालिदासः

ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः इस यास्क वचनानुसार समाधिकी अवस्थामें ऋषियों ने जिन मन्त्रोंको जिस अर्थ में घटित होते दर्शन किया, उसी भांति उन मन्त्रोंका उसी अर्थ में विनियोग कर दिया । अतः वेद न ईश्वरकर्तृक और न ऋषिकर्तृक हैं । वेद स्वतः प्रमाण है परतः प्रमाण नहीं । क्योंकि कर्त्ता में भ्रम विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि १४ दोष सन्निहित हैं । दूसरा कारण यह है कि वेद शब्दानुपूर्वीक हैं अर्थानुपूर्वीक नही क्योंकि लौकिक ग्रन्थों में प्रायः देखा जाता है कि आप्तपुरुषों की वाणी अर्थ का अनुगमन करती है । पुनश्च आद्य ऋषियोंके शब्दानुसार अर्थ की प्रवृत्ति होती है ।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ।। भवभूति

इस प्रकार वेदोंमें त्रयकालिक वचन होनेसे वे त्रयकालिक अर्थात् शाश्वत हैं । सनातन धर्मावलम्बियों में सम्पूर्ण संस्कार वैदिक ही होते हैं । वेद वस्तुतः यज्ञस्वरूप परमात्मा श्रीराम की उपासना, वन्दना आदि नवधा भक्तिज्ञान कराते हैं । **यज्ञो वै विष्णुः** इस तैत्तिरीय श्रुति के प्रमाण से उन यज्ञ भगवान्‌की सिद्धि और उपासकों को काम्यकर्मकी फलसिद्धि तथा निष्काम जनों को कृपालु भगवान्‌की अनुकूलताका रहस्य प्रकट करते हुये जीवों की सम्पूर्ण मलिनता का संहरण करते हैं । लोकपितामह

चर्तुमुख श्रीब्रह्माजी ने अग्नितत्त्व से ऋग्वेद, वायुतत्त्वसे यजुर्वेद तथा सूर्यतत्त्वसे सामवेदका दोहन किया है । अतएव ऋक् श्रुति ज्ञानप्रधान, यजुः कर्मकाण्ड प्रधान और साम श्रुति उपासना प्रधान है । इस प्रकार दोहनकर्त्ता ब्रह्मा निमित्तकारण हैं और अग्नि, वायु तथा सूर्य इन वेदत्रयी के उपादान कारण हैं ।

अग्नेर्ऋग्वेदो,वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः । (शतपथ ११।४।२।३)

यहाँ पूर्वोक्त वृहदारण्यक उपनिषद्के वचन तथा इस श्रुति का समन्वय करनेसे यह निश्चित हो जाता है कि निःश्वासरूपा भगवान्‌की जो प्राणशक्ति है, वही अग्नि आदि तत्त्वके नाम से कही गयी है । ऐसा परमात्मा समस्त घट, पट, मठ आदि कार्य तथा कारणका भी परम कारण है, यह नहीं भूलना चाहिये । ब्रह्म वस्तुतः एक है । वही एक अद्वितीय ही उपासकोंके अनुरञ्जन हेतु विविध रूपोंको धारण करता है । अतः लोक में जिस जिसकी आवश्यकता होती है, उसकी उपलब्धि परमात्मा करा देता है । उस एकसे ही अनन्तकी रचना होती है । यथा--

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

लोक में बुद्धि-बिवेक (विचार) की प्रथम आवश्यकता है। विवेकहीन प्राणीका कोई मूल्य अर्थात् अस्तित्त्व नहीं है । विवेक के बिना लोक मर्यादा का संचालन ही नही हो सकता । अतः

भगवान्‌ने विवेक का जो उपदेश दिया, वही मुखाङ्गभूत ब्राह्मण है। इसलिये विवेक अर्थात् वेदज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्माजी को प्राप्त हुआ। अतः ब्रह्माजी आदि कवि (विद्वान्) कहे गये—

तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः (श्रीम० १।१।१)

बल के बिना विवेक का पालन हो नहीं सकता, अतः जीवन के अनेक धूप, छाँव सहन करने की क्षमता और पालन पोषण कार्यकी सिद्धि हेतु भगवान्‌का आजानुबाहु रूप ही क्षत्रिय कहा गया।

बल का भी साधन सम्पत्ति है, इसके साधक को लोक में वैश्य कहा गया है और यही भगवान्‌का उदर और जँघा कहा गया है। अब चरणके बिना ये तीनों क्रियाशील नहीं हो सकते, चलनात्मक कर्म के साधक सुन्दर और स्वस्थ चरणके बिना ये तीनों पुरुषार्थं असहाय सिद्ध हैं अतः भगवान्‌के श्रीचरण सेवा प्रधान शूद्रके प्रतीक हैं।

इस प्रकार सेवा, सम्पत्ति, बल और विवेक एक दूसरेके पूरक और परस्पर सहयोगी हैं। इस व्यवस्था के बिना जैसे शरीर वैसे समाजकी मर्यादा भी अस्त व्यस्त हो जाती है। पुनश्च इनके भी शासक प्रशासक त्रिदेव आदि देववृन्द हैं। दण्ड और पुरस्कार का अधिकार उन्हें प्राप्त है। नवग्रह रूपमें भी वही देवता हैं। सबके स्वामी भगवान् एक राष्ट्रपति की भाँति सभी लोकों चतुर्दश भुवनके साक्षी हैं।

साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च।

इसी प्रकार चन्द्ररूप से अपनी लावण्यमयी, आह्लादमयी शीतल किरणोंकी कृपासे जड़ चेतनको आनन्दित करते हैं,किन्तु जीव को चकोर बनना होता है । उन प्रभुके तैजस् तत्त्व ही सूर्य, श्रोत्र ही वायु और प्राण [प्राणवायु] तथा मुख ही अग्नि है । उपनिषदों में उस ब्रह्मकी कारणावस्था और कार्यावस्था उदाहरण अग्नि, वायु और सूर्य द्वारा कही गयी है ।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा ॥
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्नलिप्यते चाक्षुषैबाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ।

वेद ३ हैं अथवा ४ की संख्यामें ? यहभी जिज्ञासा लोगों की बनी रहती है । वस्तुतः वेद ४ हैं, किन्तु त्रयीविद्याके नाम से ३ की सुप्रसिद्धि है । बालमीकि रामायणके किष्किन्धाकाण्ड में **मारुति मिलन प्रसंग** के समय श्रीराम ने श्रीहनुमान्‌जीको ऋग्, यजुः और सामवेद का विशेषण कहा गया है । इसका कारण यही है कि अध्यात्म प्रधान भारतके मनीषियोंने लौकिक साधना वाले साधनको अति अल्प महत्व दिया है। प्रस्तुत अथर्व वेदको लेकर वेद चतुष्टयीकी जो पूर्णता होती है, उसमें अनेक तान्त्रिक अनुष्ठान, अस्त्र-शस्त्र निर्माण विधि आदि अनेक प्रकार के लौकिक साधनोंका विवेचन प्राप्त होता है, अतः लौकिक

फलप्रदायक अथर्वकी पृथक् गणना मानी जाती है । छान्दोग्य आदि में चारों वेद समान और समकालिक कहे गये हैं ।

इन वेदोपदेश की ३ शैली प्राप्त होती है—१-गद्यात्मक, २-पद्यात्मक, ३-गीत्यात्मक । इसमें ऋग्वेद पद्यात्मक, यजुर्वेद गद्यात्मक और सामवेद गीत्यात्मक है । अथर्ववेद भी प्रायः पद्यात्मक ही है ।

मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् के अनुसार वेदोंके दो भाग हैं— संहिताभाग और ब्राह्मणभाग । **अग्निमीडे पुरोहितम्०, इषेत्वोर्जेत्वा०** इत्यादि संहिता है। इन संहिता मन्त्रोंके व्याख्यान-रूप ब्राह्मण भाग है । अतः मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंका वेदत्व सिद्ध होता है ।

जैसे महाभाष्यकार पतञ्जलि ने **"रक्षोहागमलध्वसंदेहाः प्रयोजनम्'** यह कहकर **'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्'** इत्यादि उसका व्याख्यान किया है । इस पंक्तिमें जैसे मूल और व्याख्यान दोनोंका व्याकरण महाभाष्यत्त्व सिद्ध है तथा भट्टोजि दीक्षित के अनुसार **मुनित्रयम्** यहाँ एक वचन सिद्ध होता है । (यद्यपि त्रिशब्द नित्य बहुबचन में है तथापि महर्षि पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि इन त्रिमुनि के उपदेशको व्याकरण कहा जाता है । यहां त्रिमुनि में अवयव अर्थ में तमप् प्रत्यय हुआ है,अतः एक वचन का प्रयोग हुआ) उसी प्रकार मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों भागोंका वेदत्व सिद्ध है । ब्राह्मण भाग वह है जो संहिता में समागत पदों और वाक्यों के अपेक्षित अर्थोंका हेतु, निर्वचन आदि द्वारा उसके अर्थोंको प्रकाशित करता है । यथा—

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य हि ॥

एक दोका उदाहरण दे रहा हूँ । यथा—हेतु—संहिताभाग में—अपाम् उपस्पर्शनम् आम्नातम् । तो जल का उपस्पर्श कैसे हो ? श्रोता की ऐसी जिज्ञासा होने पर ब्राह्मणभाग उसमें हेतु का निदर्शन करता है । यथा—

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति । मेध्यो भूत्वा व्रतमुपयानि । मेध्या वा आपः, अतः उपस्पृशति । पवित्रो भूत्वा व्रतमुपयानि । पवित्रं वा आपः, अतो अप उपस्पृशति इत्यादि ।

अर्थात् जो पुरुष असत्य भाषण करता है, वह अशुद्ध हो जाता है, अतः पवित्र होकर व्रत करना चाहिये, इसीलिये जल से आचमन और उपस्पर्शन इत्यादि किया जाता है ।

इसका निर्वचन इस प्रकार है—यथा संहिता में **आज्यम्** यह पद आया और ब्राह्मण उसका निर्वचन करता है **"यदाजिम् आयन् तदाज्यानामाज्यत्वम्"** अर्थात् जो समराङ्गणमें समुपस्थित हुये हैं, उनके युद्ध सामर्थ्यके लिये आज्यत्व है. अर्थात् उन्हें घृत अवश्य ग्रहण करना चाहिये ।

ब्राह्मणके भी ३ भाग हैं—ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् । उपनिषद् ब्रह्म, जीव और प्रकृति तत्त्वका निरूपण करता है । **प्रस्थानत्रय**—उपनिषद् श्रुतिप्रस्थान, गीता स्मृतिप्रस्थान तथा ब्रह्मसूत्र सूत्रप्रस्थान हैं । संक्षेपमें यह रहस्य कहा गया है ।

चतुर्थे आश्रमे इति-

सनातनधर्ममें वैदिक व्यवस्थानुसार ४ वर्ण और ४ आश्रम हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहे गये हैं। इसमें ब्राह्मणके लिये चारों आश्रम विहित हैं। क्षत्रियके लिये संन्यास के अतिरिक्त ३ आश्रम, वैश्यके लिये ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम तथा शूद्रको मात्र गृहस्थधर्म विहित है।

इस प्रकार ब्राह्मण का कर्तव्य है २५ वर्षकी अवस्था तक गुरुकुलमें शिक्षा प्राप्त करके मात्र २५ वर्षके लिये गृहस्थ आश्रम के योग्य आचरण करना पश्चात् संसारकी समस्त आसक्तियोंके शनैः शनैः त्यागका अभ्यास करना वानप्रस्थाश्रम कहलाता है। संन्यास चतुर्थाश्रम है, उसमें रोते हुये भी पुत्रकलत्र आदि को त्यागकर जंगल में चला जाना होता है। मात्र जीवन निर्वाह हेतु अशन, वसनका उपयोग करना और करतल भिक्षा, तरु-तरवास स्वीकार कर सन्तुष्ट रहतेहुये ब्रह्मज्ञानका अधिकार प्राप्त करना है। महर्षि जैमिनिकृत पूर्वमीमांसा और इस उत्तरमीमांसा का यही रहस्य है। सांसारिक प्रवृत्ति पूर्व-मीमांसा से तथा भगवत्प्रवृत्ति उत्तरमीमांसासे सिद्ध होती है। अर्थात् वेदप्रतिपादित सामान्य लक्षणवान् धर्म, अर्थ और कामपुरुषार्थ की सिद्धि होने पर और उनसे नित्य आतमसुखानुभूति होते न देखकर भगवद्-विषयक ज्ञान प्राप्ति हेतु जो हृदयमें जिज्ञासा का उदय होता है, वही मुमुक्षा है। मोक्षके इच्छुक को मुमुक्षु कहा जाता है।

इस मुमुक्षा और मुमुक्षुके विषय में दार्शनिकोंकी विविधता है। विवेक, वैराग्यकी कथनी और करनीमें धरती और आकाश का अन्तर है। कलियुग में वेदान्तज्ञान तो प्रति व्यक्तिकी जिह्वापर दिखाई पड़ता है। साथ ही लोग मानसिक विकारों से ऐसे चौतरफा घिर रहे हैं कि विचार ही समाप्त होता जा रहा है। महर्षि पतञ्जलिका वचन है—

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदो ज्ञेयोऽध्येयश्च"

अर्थात् ब्राह्मणका स्वाभाविक धर्म है कि ६ अङ्गोंके सहित वेदोंका अध्ययन और अनुभव करना। आज वेदोंकी मर्यादाका अतिक्रमण हो रहा है। मैकालेकी शिक्षा पद्धतिके समक्ष प्राचीन भारतके गुरुकुल और ऋषि परम्परा का अभाव दिखाई दे रहा है। ऐसे समयमें कौन वर्ण और आश्रमकी चर्चाकी जाये! ब्राह्मण अपनी वेद विद्याका त्याग कर रहा है यह भारतका ह्रासकाल है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने स्पष्ट लिखा है

विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी॥

प्रधानता किसकी है?

निराचार जो श्रुतिपथत्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी सो विरागी॥
बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥

अतः वेदोपदेश भी बदल गया—

शूद्र द्विजन्ह उपदेशहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥

गोत्र, प्रवर, वेद और शाखाके अनुसार कपास के कच्चे सूत्रसे निर्मित ९६ चावा का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

अब तो टेरीकाट और पैराशूटकी जनेऊ गली-गली में बिकने लगी, जिससे मनमानी सभी कोई धारण करने लगे। **लक्षः वेदाश्चत्वारः** के प्रमाण से ८० सहस्र मन्त्र कर्मकाण्ड के और १६ सहस्र मन्त्र उपासना काण्डके तथा ४ सहस्रमन्त्र ज्ञानकाण्ड के मन्त्रोंमें आज भारतमें मात्र ३२-३४ सहस्र उपलब्ध होते हैं। विधर्मियों ने सब नष्ट कर दिया। इतिहास साक्षी है, नालन्दा विश्वविद्यालयका पुस्तकालय ६ महीने तक जलता रहा विचार कीजिये कि कितना समृद्ध वह पुस्तकालय रहा होगा !

गर्भाधान से लेकर "**भस्मान्तं शरीरम्**" अर्थात् अन्तिम संस्कार तक १६ वैदिक संस्कार कहे जाते हैं। संसारकी वासनाओं से पूर्ण निर्मुक्त, शरीरके सुख-दुःखसे अपरिचित ज्ञानवान् विप्र जब चतुर्थ आश्रम-संन्यासमें प्रविष्ट होता है, तब वह ज्ञानमार्गी कहा जाता है। ९६ सहस्र मन्त्रोंको आत्मसात् कर मात्र ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ, वह कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड दोनों से ऊपर उठ जाता है। गैरिक वस्त्र और दण्ड धारण करने का विधान मात्र विप्रकुलोत्पन्नको है। गोस्वामीजी ने कलियुग का प्रभाव कहा—

द्विज चिन्ह जनेऊ उघार तपी।

द्विज चिन्ह जनेऊका त्यागकर तपस्वी हो जाते हैं।

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर करहिं न दूसरि बात।

कौड़ी लागि लोभ बस करहिं विप्र गुरु घात॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्हते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाटि ।।

परत्रिय लम्पट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ।।
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर । देखा मैं चरित्र कलियुग कर ।।

तथा परिणाम क्या हुआ—

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ।।
नारि मुई गृह सम्पति नासी । मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी ।।
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ।।
सूद्र करहिं जप तप व्रत दाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ।।

शास्त्र आज्ञा के विपरीत आचरण व्यक्ति, परिवार और समाज तथा राष्ट्रमें विक्षोभ उत्पन्न कर देता है । आज सनातन धर्मके विपरीत जिन विविध कल्पित सम्प्रदायोंका बोलवाला दिखाई पड़ रहा हैं, इसीका परिणाम यह है कि वर्तमानका धर्म उलटा फल दे रहा है । आजका प्राणी दुःखित, क्षुभित और असन्तुष्ट क्यों है ? क्योंकि वह धर्मके साथ छल कर रहा है । पाप का परिणाम दुःख,भय, रोग, शोक और वियोग देता है ।

भये बरनसंकर कलि भिन्न सेतु सब लोग ।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग ।।
श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ संयुत बिरति बिबेक ।
ते न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पन्थ अनेक ।।

वेद विहित धर्म और मर्यादाके पालनसे भय, शोक और रोगका विनाश होता है तथा सुखकी शाश्वत उपलब्धि होती है । श्रीरामराज्यके वर्णनमें कहते हैं—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय शोक न रोग ।।

धर्मो रक्षति रक्षितः धर्म की रक्षा जब हम करते हैं तो वह धर्म भी पिताके समान हमारी रक्षा करता है। धर्मपालन एक बहुत बड़ी तपस्या है ।

संन्यास की दो विधायें हैं-सामान्य और विशेष । सामान्य संन्यास वह है जिसका निर्देश **आश्रमादाश्रमं गच्छेत्** इत्यादि पंक्तियों में है । इसे योगज संन्यास कहते हैं । प्रथमावस्था में ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन, पुनः गृहस्थ जीवनके उपभोग योग्य विषय भोगों की सम्पूर्ण सामग्री को एकत्रित करना आदि । महाकवि कालिदासजी ने लिखा है—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।

इसलिये इस असार संसारमें कर्मरहस्य अतिमहत्त्वपूर्ण है। जो प्रथमावस्था में शिक्षा से पूर्ण नहीं हो पाया, द्वितीयावस्था में जिसने कर्मठताके साथ धर्म, अर्थ और कामोपभोगकी सामग्री अर्जित नहीं कर पायी तथा तृतीयावस्था में तपस्या की सिद्धि नहीं कर पायी, तो वह चतुर्थावस्थामें क्या कर सकता है,अर्थात् मात्र पश्चात्तापमें जलता हुआ अमूल्य जीवनको व्यर्थमें व्यतीत कर देता है ।

प्रथमे वयसि नाधीतं द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति ।।

अतः जिसका कर्मयोग सिद्ध हो जाता है, उसीका भक्ति योग सिद्ध होता है और जिसके ये दोनों योग सिद्ध हो गये, वही ज्ञानयोग का अधिकारी है उसीको ज्ञानयोगकी सिद्धि होती है। ब्राह्मण शरीर अन्तिम शरीर है। मृत्युलोकमें इससे उत्कृष्ट और कोई शरीर नहीं है। यह व्यर्थमें न बीत जाये इसीलिये प्रतिक्षण ब्रह्मचिन्तनमें संलग्न रहना परम कर्त्तव्य है। श्रीकाकर्षि अपनी आत्मकथामें कहते हैं—

चरमदेह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई ॥

द्वितीय विधा संन्यासकी वह है कि **यदहरेव विरज्येत तदहरेव प्रव्रजेत** अर्थात् हृदयमें जब भी तीव्र वैराग्यका उदय हो जाये, तत्काल संन्यास ग्रहणकर लेना चाहिये। श्रीसनकादि, शुकादि मुनि इसी कोटिमें आते हैं। तीव्र वैराग्यके बिना सन्यास सिद्ध नहीं हो पाता है। क्षणिक वैराग्य के कारण आवेश में विरक्त दीक्षा और संन्यास ले लेने से आरूढ़ पतित हो जानेका भय रहताहै। प्राचीनकालमें समावर्तन संस्कार (दीक्षान्त समारोह) के पश्चात् एकवर्ष संसार में भ्रमण करते थे। जिनका मन विषयोंसे विमुख होता था उन्हें गुरुकुल से विरक्त दीक्षाकी आज्ञा मिल जाती थी, अतः वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में आजीवन रहते थे। जिनका सांसारिक प्रवृत्तिकी ओर झुकाव होता था वे गुरु आज्ञा से विवाह कर लेते थे। इसमें सम्पत्ति की बहुलता और नारी संग सबसे विकट बाधा है। आदि-शंकराचार्यजी ने प्रश्नोत्तरी में कहा है-नरक का द्वार क्या है? उत्तर-नारी। **द्वारं किमेकं नरकस्य ? नारी।**

इसलिये 'आश्रमादाश्रमं गच्छेत्' यह सिद्धान्त बना दिया गया कि जोवनकी परिपक्वावस्थामें समुचित संन्यास सिद्ध हो जाता है। बौद्ध मठों में भिक्षुणियों की अधिकता से भारत में बौद्ध भिक्षुओंका सूर्य अस्त हो गया।

देवर्षि नारदजी ने जब भगवान् श्रीरामजी से यह प्रश्न किया कि प्रभो ! जब मैंने विवाह करना चाहा था तो आपने क्यों नहीं होने दिया। इसपर प्रभु श्रीरामजी ने उन्हें समझाया कि तुम आरूढ़ पतित हो रहे थे, अतः मैंने तुम्हारी विकारोंसे रक्षा की है—

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महुं अति दारुन दुःखद मायारूपी नारि॥
सुनु मुनि कह पुरान श्रुति सन्ता। मोह विपिन कहुं नारि वसन्ता।
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी॥
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुःख खानि॥
ताते कीन्ह विवारन मुनि मैं यह जिय जानि॥

यह शिक्षा ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यास के लिये है, गृहस्थ के लिये नहीं। गृहस्थ आश्रम में नारी अनिवार्य अंग है, बिना उसके गृहस्थी ही अधूरी रहती है। गृहस्थोका प्रथम साधन नारी है। **गृहिणी गृहमुच्यते**। गृहिणीके निवास स्थान को गृह कहतेहैं और इससे विरहित गृहको आश्रम कहा जाताहै। **हरिभाष्यम्—भगवद्गीतायामुक्तम्—तन्मते नहि ज्ञानमेव ब्रह्मप्रतिपादकम्। कर्माण्यपि तथा—**

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥१२/६/७

कर्माणि कृत्वा कृत्वा संन्यस्य संन्यस्य च तानि तत्परायणः परमेश्वरेण संसारसागरादुद्धार्यंत एव । अस्मिन् श्लोके कर्मणां संन्यासः परन्तु कर्मफलसंन्यास एवापेक्षितः । कर्म तु क्षणं द्विक्षणमेव स्थायि । कथं तस्य परमेश्वरार्पणम्? कर्मणां यत्फलं कथितं तत्फलमस्मिन्नेव भगवति समर्पितं भवति । 'मां ध्यायन्तोऽनन्येनैव योगेन मामुपासते ये मां ध्यायन्त इत्यस्य मां'सोद्धारकं ध्यायन्त इत्यर्थः । अनेन प्रकारेण सत्कर्मसमवायोऽपि जीवं ब्रह्म प्रापयति इति उक्तं भवति ।

भक्ति भूषणभाष्य–

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि ज्ञान ही ब्रह्मका प्रतिपादक नहीं है किन्तु कर्म भी है । यथा-जो सभी शुभाशुभ कर्मको मेरेमें समर्पित कर मेरे परायण हो जाते है तथा अनन्य भक्तियोग से ही मेरा ध्यान और उपासना करते हैं, मृत्यु रूप संसार सागर से मैं उनका उद्धार कर देता हूँ । मेरेमें आवेशित चित्तवालों के प्रति मैं दूर नहीं रहता । जो कर्मोंको कर करके और उनके फलोंको बारम्बार समर्पित कर परमात्माके परायण हो जाता है तो उस परमेश्वर द्वारा तो उनका उद्धार हो ही जाता है ।

इस श्लोकमें कर्मोंका संन्यास जो कहा गया है, उसका तात्पर्य कर्मफलका संन्यास कहा गया है। कर्म तो क्षण द्विक्षण ही स्थायी होता है। तो कैसे परमेश्वरको समर्पित किया जाये?

इसका उत्तर यही है कि कर्मोंका जो फल कहा गया है वह फल ही भगवान्में समर्पित होता है। "मेरा ध्यान करते हुये अनन्ययोगसे जो मेरी उपासना करते हैं।" 'मां ध्यायन्तः' इसका अर्थ यह है–मुझ उद्धारक को। इस प्रकार सत्कर्मोंका समवाय (समूह) भी जीवको ब्रह्मप्राप्ति कराता है, ऐसा कहना समीचीन है।

कर्माणि कृत्वा इति–

यह संसार कर्मक्षेत्र है। "वीरभोग्या वसुन्धरा" इसीलिये कहा जाता है। अतः जिनकी इन्द्रियाँ स्वस्थ हैं, उनके लिये मलूकदास की यह पंक्ति नहीं है—

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गये सबके दाता राम॥

जो अजगरकी भाँति अशक्त होने से चल फिर नहीं सकते उन्हें तो बरवश दूसरेके भाग्य पर जीना होता है। दूसरे का मुखापेक्षी बनना पड़ता है। ईर्ष्यालु, दीनों से घृणा करने वाले, डराकुल, असन्तुष्ट, नित्यक्रोधके वशीभूत तथा परभाग्योपजीवी ये ६ प्रकारके लोग दुःखी कहे गये हैं। **"षडेते दुःखभागिनः"** पक्षियोंका भी जीवन दयनीय होता है, किन्तु मनुष्य भी यदि कर्म करना छोड़ दे तो मृत्युलोकका कर्मही समाप्त हो जायेगा।

कर्म मात्र भोजन आदिका साधन एकत्र कर लेना नहीं है, अपितु मानवीय गुणों दया, कृपा, क्षमा, धैर्य, धर्म, कर्त्तव्य,अर्थ, ममता धैर्य, नीति, विवेक आदि सद्‌गुणोंका संचय कर मेघकी भाँति परोपकार हेतु व्यय कर देना कर्मयोगकी यह परम चरितार्थता है। यदि जीवनमें कहीं विपरीत परिस्थितिका सामना भी करना पड़े तो भी हँसते हुये सह लेना बहुत ही लाभकारी होता है। बिना विषके अमृतकी प्राप्ति नहीं होती है यह दृढ़ सिद्धान्तहै। जो विष पीकर भी मुसुकराता रहता है वही महादेव है। किसी ने कहा है—

दुनियाँ में हम आये हैं तो जीना ही पड़ेगा ।
जीवन है अगर जहर तो पीना ही पड़ेगा ।।
घिर-घिर के मुसीबत में सम्हलते ही रहेंगे ।
जल जायें मगर आग में चलते ही रहेंगे ।।
गम दिया है जिसने वही गम दूर करेगा ।
जीवन है अगर जहर तो पीना ही पड़ेगा ।।

एक उपासक ने और भी विस्तार किया—

मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान् तुम्हारे चरणों में ।
सियाराम तुम्हारे चरणों में ।
यह विनती है पल-पल, छिन-छिन रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।
चाहे वैरी सब संसार बने, चाहे जीवन मुझ पर भार बने ।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।
चाहे अग्नि में मुझे जलना हो, चाहे काँटों पै मुझे चलना हो ।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अँधेरा हो।
पर मन ना डगमग मेरा हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ॥
जिह्वा पर तेरा ही नाम रहे तेरी याद सुबह औ शाम रहे।
तेरी याद में आठों याम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ॥
सियाराम तुम्हारे चरणों में ॥

अर्थात् कर्मरूप पुरुषार्थ पर दृढ़ रहकर अपने अनन्यरक्षक के प्रति अडिग विश्वास तथा कर्त्तापनके त्यागपूर्वक सर्वशक्तिमान् का ध्यान यही तत्त्वत्रय-कर्म, ज्ञान और भक्तियोग है। भगवान् की विस्मृति कभी न हो यही ध्यायन्तः उपासतेका परम तात्पर्य है । उपर्युक्त गीताकी पंक्तिको देखकर जो कर्मसे विरत हो जाते हैं, वे महा अकर्मण्य हैं । यह पलायनवाद है । इसीलिये भाष्य में कहा गया— **कर्मणां संन्यासः कर्मफलसंन्यास एवापेक्षितः** शास्त्रोंके रहस्यसे अपरिचित कुछ अनभिज्ञ ऐसा कह दिया करते हैं कि वेदान्त में कर्मका महत्त्व नहीं है, केवल मोक्ष अर्थात् आत्मा और परमात्माका विश्लेषण है। संसारके भोगोंका त्याग करो, केवल ब्रह्मका चिन्तन करो, इत्यादि । किन्तु ऐसा ही सोचना जड़ता है । जो आत्म-परमात्मचिन्तन सर्वोपरि कहा गया है, वह जीव, जगत् और कर्मरहस्य को खोल देता है । तात्पर्य यहीहै कि जीव, जगत् और उसकी शक्ति अल्प है,अतः सर्वशक्तिमानसे जुड़कर वह असीम हो जाता है। वह सच्चिदानन्द घन है और जीव सच्चिदानन्द कण है । जब विन्दु समुद्र में जाता है तो वह पूर्ण हो जाता है । अब अलग उसकी सत्ता

नहीं है। अलग हो जाने पर तो वह फिर विन्दु ही कहा जायेगा। अंश में अंशत्व का सामर्थ्य और अंशी में अंशीत्व का सामर्थ्य होने के कारण अपने अंशी का ध्यान करना ही चाहिये। इससे उसकी कृपा की अनुभूति होती है। अनुभूति ही कर्मफल संन्यास की प्रेरणा देती है। कर्मफल की आसक्ति और कर्त्तव्य कर्मका त्याग ये दोनों महाभयदाक हैं। कर्मफल की आसक्तिसे जीवन एक घेरेमें बँधकर संकुचित होकर सूख जाता है और कर्मके त्यागसे दरिद्रता, असन्तोष, कलह, छीनाझपटी, चोरी और अराजकताका जन्म होता है। कर्महीन और दरिद्र व्यक्ति कभी धर्मात्मा उदार और ईश्वरभक्त हो ही नहीं सकता। वह क्षुधानिवृत्ति से आगे और क्या सोचेगा ? कर्मपुरुषार्थके साथ यदि ईश्वरका ध्यान बना रहे तो अपनी अल्पता और ईश्वरके असीम सामर्थ्यका ज्ञान बना रहता है। ऐसे ही कर्मयोगी उस ईश्वरके परमप्रिय कहे गये हैं। अतः ईश्वरमें समर्पणके उद्देश्य से कर्म अनिवार्य कहा गया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ॥ ईश०उ० १।२

शास्त्रोंकी आज्ञानुसार कर्म करते हुये सौ वर्षों तक जीनेकी इच्छा करनी चाहिये, यह वेद भगवान्की स्पष्ट वाणी है। कर्मोंमें आसक्ति और कर्त्तापन का अहंकार यह बन्धन में डालता है। ईश्वर समर्पित कर्मफल संसार के कठिन क्लेश से मुक्त कराता है। भगवान् ने मानव शरीर दिया। कर्म करने के लिये इन्द्रियाँ प्रदान की हैं, तो भोग भोगनेके समय पशुवत्

व्यवहार न बन जाय, अतः शास्त्राज्ञा मनुष्यको सावधान करती है । जो कमफलसे लिप्त नहीं होता है, भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा है कि मैं जन्म मृत्युके संसारसे उसका उद्धार कर देता हूँ । जो कर्मफलमें पूर्ण आसक्ति रखता है, उसे मैं आसुरी और अधम (कूकर,सूकर) योनिमें डाल देता हूँ । धन, मान और दम्भ आदि से पूर्ण प्राणोको नरक की प्राप्ति होती है । प्रवृत्तिके अनुसार कामना भी सिद्ध होती है । सूरदासजी कहते हैं—

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
जिन तन दियो ताहि विसरायो ऐसो नमकहरामी ।
भरि-भरि उदर विषय को धावत जैसे शूकरग्रामी ॥

गीताके इस भक्तियोगमें कर्मकी परिणति उपासनामें हैं । ऐसी उपासनासे अन्वित ज्ञानमार्गमें पतनका भय नहीं रह जाता है, क्योंकि उद्धार करनेकी प्रतिज्ञा भगवानकी है—

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।

ऐसे भक्तकी मर्यादाको कौन भङ्ग कर सकता है ?

सीम कि चापि सकइ कोउ तासू । बड़ रखवार रमापति जासू ॥

इस संसार में भगवान्‌से बड़ा मित्र कोई नहीं है । जो आदि और अन्त तक का मित्र है, वह सत्य मित्र है और जो मध्यका मित्र है, वह स्वार्थी मित्र है । भगवान् परमार्थी मित्र हैं । संसार सम्पत्ति पाकर मित्र बनता है । भगवान् ने मानव ऐसा स्वस्थ और सुन्दर पुरुषार्थी जीवन दिया । सुखके साधन नाम, यश और वैभव दिया । संसार तो —

हरो चरहिं तापहिं बरत फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ।।
तूठहिं निज रुचि काज करि रूठहिं काज बिगारि।
तीय तनत सेवक सखा मन के कंटक चारि।।

एक दिन वह भी आ जाता है जब असाध्य रोग और वृद्धावस्थाके कारण लोग जीवनसे भी ऊब जाते हैं। मरनेकी प्रतीक्षा करते हैं। कितने लोग डूबकर आत्महत्या तक कर डालते हैं। जीवके लिये स्वर्गका भी भोग अल्प ही कहा गया है। धर्म और पुण्यसे अर्जित जो स्वर्गकी प्राप्ति होती है, पुण्य क्षीण होनेके पश्चात् पुनः उससे मृत्युलोक (दुःखालय) में गिरना पड़ता है। अतः यह मृत्युलोक स्वर्ग और निर्भय हरिपद का प्रदाता है, यदि कर्मयोग भगवत् चिन्तन परक सिद्ध हो गया तो गीता में—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति।

अतः श्रीरामगीतामें कहा गया है—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहुं स्वल्प अन्त दुखदाई।।
जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मन्दमति आत्माहन गति जाइ।।

जिसके जीवनमें भगवत् सम्बन्ध नहीं, वह आत्मघाती है। जीवनके सम्पूर्ण क्रियाकलापमें भगवान्का चिन्तन करना आत्म सम्मान है। मात्र विषयोपभोग आत्मघात है। कर्मका त्याग कर और उससे पलायन व्यक्ति सरल मानता है। कुछ लोग कहते

हैं कि 'माला लेकर भजन कर रहा हूँ तो कर्मकी आवश्यकता ही क्या है ?' पुनश्च कितने लोग स्वस्थ होते हुये भी भगवान् के नाम पर भिक्षाटन करने लगते हैं। भिखारी होकर भी अभिमान नहीं जाता है। अतः यदि भिक्षावृत्तिका ही जीवन बनाना है तो भिक्षा माँगकर भिक्षा देना अर्थात् धनीसे लेकर दरिद्रको देना धर्म है।

कितने लोग ज्ञान, योग और वैराग्यका स्वाँग करते हैं। वञ्चक वेष भी धारण कर लेते हैं, लेकिन हृदयकी विविध वासनाओंके समुद्र में डूबते उतराते रहते हैं। हरिध्यानके बिना सब निरर्थक है। गोस्वामीजी महाराज ने विनयमें कहा—

नाचत ही निसि दिवस मर्यो।
तब ही ते न भयो हरि ! थिर जब ते जिव नाम धर्यो।
बहुवासना, विविध कंचुक–भूषन–लोभादि भर्यो।
चर अरु अचर गगन, जल, थल में कौन स्वाँगु न कर्यो।।
देव दनुज, मुनि, नाग, मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्यो।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हर्यो।।
थके नयन, पद, पानि, सुमति-बल, संग सकल बिछुर्यो।
अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभय विकल डर्यो।।
जेहि गुन ते बस होहु रीझि करि सो सब मोहिं बिसर्यो।
तुलसीदास निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो।।

दुर्गासप्तशती में राजा सुरथ ने मेधा नामके मुनिसे यह प्रश्न किया–मुने ! जिन विषयवासनाओंमें प्रत्यक्ष दोषही देखा

जाता है, उसके भी ममत्व से मेरा मन क्यों आकर्षित हो रहा है ? ज्ञानी होने पर भी विवेकसे अन्ध पुरुषकी भाँति यह मोह क्यों दिखाई दे रहा है ? यद्यपि विषयभोग परिणाममें दुःखही देते हैं। इनका अन्त वियोग ही है। उन ऋषि ने कहा—

दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥

अर्थात् इस मोहमय संसार में पशु, पक्षी, मनुष्य आदि जितने प्राणी हैं, वे सब समझदार हैं—निजहित अनहित पशु पहिचाना। मानुष तन गुन ज्ञान निधाना ॥ फिर भी तीन प्रकार के अन्धे होते हैं। कोई रात्रि का अन्धा तो कोई दिनका अन्धा तथा कोई दिवा और रात्रि दोनोंमें अन्धे होते हैं। यह महामाया भगवती की निर्दयता का प्रभाव है।

एक नरपक्षी भी अपनी मादा पक्षीके प्रसव हेतु तृणोंको चुनचुनकर घोंसला (नीड) तैयार करता है। स्वयं भूखसे पीडित होने परभी अपने बच्चोंके मुखमें अन्नका दाना लाकर छोड़ता है। सभी कोई अपने साजात्य से प्रेम करते हैं। जबकि उन पशु पक्षियोंका कोई स्वार्थ नहीं होता है। लेकिन मनुष्यको देखो ! अपने उपकारका बदला पानेके लिये अपने आश्रित परिवारजन की कमरतोड़ सेवा करते हैं। विनय में—

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की ।

× × ×

कहाँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की ॥
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निजपन की ॥

हरिभाष्यम्—

यथा च कर्मप्रवाहेण सहैव मोक्षसाधन प्रवाहत्वं सुस्पष्टं प्रतीयते। अनेन प्रकारेण शुभकर्मव्रतपूर्वकं स्वकीयं सर्वेश्वरे समर्पयन् स एव संसारसागरान्ममोद्धारक इति विचिन्तयन्परमेश्वरेण एव संसारसागरादुत्तार्यत इति। यथा—

अभ्यासेऽप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ (गीता० १२।२०)

मदर्थं कर्म—मत्कर्मेत्यर्थः। भगवदर्थकर्मतद्भवति येन संसारः प्रार्थितो न भवति। फलेच्छया विना कर्म मुक्तिं प्रापयति।

भक्ति० भाष्य—

और इस प्रकार कर्म प्रवाहके साथ मोक्ष प्रवाह सुस्पष्ट प्रतीत हो जाता है। सत्कर्म जो व्रत अथवा अनुष्ठान है उसे सर्वेश्वरमें समर्पण करते हुये ऐसा दृढ़ विश्वास रखे कि परमेश्वर ही संसार सागर से मेरा उद्धारक है ऐसा करते हुये परमेश्वर द्वारा वह तर जाता है। भगवान् के लिये जो कर्म होता है, उसमें संसार प्रार्थित नहीं होता है। इस प्रकार फलेच्छाविना कर्म मुक्तिको प्राप्त कराते है।

हरिभाष्यम्—

अथवा अस्माद्धेतोर्ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या। किं कारणम्? मनसि संकल्पिताद्धेतोर्ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या। संकल्पहेतुः संसारनिवर्त्तकम्। संसारनिवृत्तिहेतुका हि सा जिज्ञासा। ब्रह्मजिज्ञासमानानां न संसारोऽवरोधको भवति।

अथवातो कर्मसमवायिसम्पादनानन्तरं ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या। वार्द्धक्ये कर्मकालः समाप्तिं यास्यति। संसारिकं कर्म कर्त्तुं न

भवत्यवशिष्टारक्तिस्तदानीम् । स एव कालः परिव्रज्यायाः । तदानीमेव ब्रह्मजिज्ञासा सेवनीया इति ।

अथवातो वेदाध्ययनाद्धेतोर्ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या । वेद-श्रवणाध्ययनानन्तरं हि ब्रह्मानुभवकालः । वेदश्रवणं तु ब्रह्मचर्याश्रमे सम्पद्यते,तर्हि कथं स एव कालो न ब्रह्मजिज्ञासायाः। नहि शास्त्रकाराः ब्रह्मचर्यसंन्यासाश्रमयोरन्तरालं सहन्ते । अतः सामान्यविशेष-नियमाभ्यामुभयतो ब्रह्मजिसासा कर्त्तव्या ।

भक्तिभूषण भाष्य–

अथवा इस हेतुसे ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये । किस हेतु से ? **यदहरेव विरज्येत तदहरेव प्रव्रजेत्** इस हेतुसे ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये । संकल्पका जो हेतु है, वह संसारका निवर्तक है। वह ब्रह्मजिज्ञासा संसारके निवर्तनकी कारणावस्था है । ब्रह्म-जिज्ञासा करने वालोंके लिये संसार अवरोधक नहीं होता है ।

अथवा कर्मसमूहके सम्पादनके अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये । बृद्धावस्थामें कर्मकी समाप्ति हो जाती है। उस समय सांसारिक कर्म करनेकी इच्छा नहीं रह जाती है। वही परिव्रज्या का काल है । उसी समय ब्रह्मजिज्ञासाका सेवन करना चाहिये ।

अथवा वेदाध्ययनको कारण मानकर ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये । वेद श्रवण और अध्ययनके पश्चात् ही ब्रह्मके अनुभव का काल होता है ।

वेद श्रवण तो ब्रह्मचर्याश्रम में सम्पन्न हो जाता है; तो वही समय क्यों ब्रह्मजिज्ञासा का नहीं है ? शास्त्रकार ब्रह्मचर्य

और संन्यासमें कोई भेद सहन नहीं करते। अतः सामान्यविशेष दोनों नियमों में से यह ब्रह्मजिज्ञासा ही करनी चाहिये।

हरिभाष्यम्—

अथवा वेदाध्ययनं तदनन्तरं ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्येति सूत्रार्थः। ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासश्च आश्रमाः, एषु सर्वेषु आश्रमेषु ब्रह्मजिज्ञासा भवत्येव। सा च गुर्वाश्रमं प्राप्य कर्त्तव्या। 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेच्छ्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इति। कुत्रापि गत्वा-काचिज्जिज्ञासा कर्त्तव्येति मूर्खवचनम्। यत्किञ्चिज्ज्ञातुमिच्छा कुत्रापि कदाप्युदियात्। कस्तां निरुन्धीत ? गृहेष्वपि सोदियात् नोदियाद्वनेऽपि। सत्यम्। एतस्माद्ब्रह्मजिज्ञासा इत्यस्य ब्रह्मज्ञान-मित्येवार्थ इत्युक्तं पूर्वम्। ब्रह्मज्ञानार्थं गुर्वभिगमनस्य नायंकालः। सर्ववेदस्य तात्पर्यं ज्ञात्वा सर्वग्रन्थार्थतत्त्वं ज्ञात्वा समाप्तगार्हस्थ्य वानप्रस्थस्य च वृद्धत्वं गतस्य विदुषोऽध्यापितसर्वशास्त्रस्य न पश्यामो गुरुकुलाभिगमनहेतुम्। अतो हेतो गार्हस्थ्यमनुभूय वनी भवेत् वनी भूत्वा परिव्रजेत्।

फलमनुद्दिश्य कस्मिन्नपि कर्मणि मन्दोऽपि न प्रवर्तते। किमस्ति फलोद्देश्यम् ? ब्रह्मज्ञाने प्रवृत्तिर्भवेत्। "अनावृत्तिः शब्दात्तु" इति ब्रह्मज्ञान फलन्तु ग्रन्थान्ते उक्तम्। पुनर्जन्माभाव एव ब्रह्मज्ञानफलम्। जन्माभावे सर्वविकाराणां प्रशमः तस्मात् सर्वदुःखनिवृत्तिरूपा मुक्तिरेव ब्रह्मज्ञानफलं वेदनीयमिति। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्ट-स्ततस्तेनामृतत्वमेति। न पश्यो मृत्युं पश्यति। ब्रह्मविदाप्नोति परम्।" इत्यादीनां श्रुतीनामयमेवार्थः।

अथवा वेदाध्ययनके पश्चात् ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये, यह सूत्रार्थ है। ब्रह्मचर्य गृहस्थवानप्रस्थ संन्यास इन सभी आश्रमों में ब्रह्मजिज्ञासा होती ही है। और वह गुरु आश्रम में जाकर करनी चाहिये। "तद्विज्ञानार्थम्०" इत्यादि पंक्ति प्रमाण है। कहीं भी जाकर कोई भी जिज्ञासा करनी चाहिये, यह मूर्खवचन है। जो कुछ जिज्ञासा कहीं कभी हो तो उसकी शान्ति कौन करे? इस पर कहते हैं-घरमें भी वह उदय हो सकती है,वन में भी नहीं हो सकती है। सत्य है, इसीलिये पूर्वमें ब्रह्मजिज्ञासा इस वाक्य का अर्थ किया गया-ब्रह्मज्ञान। ब्रह्मज्ञान हेतु गुरुके समीप जाना,यह समय नहीं है। सभी वेदोंके तात्पर्यको जानकर सभी ग्रन्थोंके तत्वार्थ को समझकर, गृहस्थ और वानप्रस्थ की समाप्ति कर बृद्ध हो जानेपर, सभी शास्त्रोंका अध्यापन कराकर किसी विद्वानका गुरुकुलमें जाना नहीं देखा गया है। इसीलिये सामान्य नियम यही है कि गृहस्थोका सम्यक् अनुभव कर वनमें जाना चाहिये। ❀ वन जाकर संन्यास धारण करना चाहिये।

यदि फलका उद्देश्य न हो तो किसी भी कर्ममें मन्दबुद्धि भी प्रवर्तित नहीं होता है। फलका उद्देश्य क्या है? उ०-ब्रह्मज्ञान में प्रवृत्ति हो जाना। **"अनावृत्तिः शब्दात्"** इस ग्रन्थान्तसूत्रमें ब्रह्मज्ञानका फल कहा गया है। पुनर्जन्मका अभावही ब्रह्मज्ञान का फल है। जन्माभाव होने पर सभी विकारोंका प्रशमन हो जाता है। उससे सकल दुःखोंकी निवृत्तिरूप मुक्ति ही ब्रह्मज्ञान के फल को जानना चाहिये। **"ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः"** इत्यादि श्रुतियोंका यही अर्थ है।

❀आधुनिक समयमें वनमें ऋषि नहीं रहते हैं अतः जहाँ वे हों वहीं जाना चाहिये।

हरिभाष्यम्–

वेदान्त दर्शने तस्य ब्रह्मणो वर्णनं केन प्रकारेणाभूत् ? प्रभृति ब्रह्मविषयकं वृत्तं ग्रन्थेऽस्मिन् विविच्यते ।

इत्थं ब्रह्म अर्थात् "अथातो रामजिज्ञासा" श्रीरामचरित-मानसे भगवती पार्वती भूतभावनं श्रीशिवं पप्रच्छ । निर्गुणं ब्रह्म केन प्रकारेण सगुणत्वं याति इति सर्वं विचार्यं मामवबोधयितुं तव महती कृपा भविष्यति । कलिपावनावतारेण श्रीतुलसीदासेन ब्रह्मविषयिका एषा जिज्ञासा घट्टरूपेणोपस्थाप्यते ।

सुठि सुन्दर सम्बाद वर विरचे बुद्धि विचारि ।
तेहि येहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ।।

"घट चेष्टायाम्" धातोः घाट शब्दस्य सिद्धिर्भवति । इमां श्रीरामकथां मेधया विचार्य सुन्दरतमं घट्ट चतुष्टयम् (शिव–पार्वती मध्ये, याज्ञवल्क्य–भरद्वाजमध्ये, काकर्षि–भुशुण्डि मध्ये, तुलसीदास सन्तानाञ्च मध्ये) रचयामास । तानि इमानि घट्ट चतुष्टयरूपेषु प्रसिद्धाः सन्ति । अति मनोहरे श्रीरामचरित्रे सरोवरघट्टेषु रघुपतेर्निर्गुणनिर्बाधैक रसानाञ्च वर्णनमेतस्य सुन्दरस्य जलस्येदं गहनगभीरञ्च ब्रह्मतत्त्वं विद्यते । श्रीशिवपार्वती विहारस्थलं सर्वेषु पर्वतेषु कैलाशः श्रेष्ठो रमणीयश्चास्ति । तस्मिन्नद्रौ सिद्धतपस्वियोगि देवकिन्नरमुनिसमूहाश्च निवसन्ति ते सर्वे पुण्यतमाः सन्ति । आनन्दकन्दं महादेवं ते सर्वे भजन्ति ।

तत्र भगवत्याः पार्वत्याः हृदि ब्रह्मजिज्ञासा उदिता संजाता। सा विनयपूर्वकेण शंकरसन्निधौ गतवती। भूतभावनः श्रीशंकरः स्वकीयां प्रेयसीं ज्ञात्वा बह्वादरितवान्। वामभागे आसनं च प्रदत्तम्।

पार्वती पृच्छति, प्रभो ! ये परमार्थ तत्वविदः ब्रह्मज्ञानिनः श्रोतारो वक्तारश्च सन्ति ते श्रीरामचन्द्रमनादिनिधनं ब्रह्मेति प्रतिपादयन्ति। शेष, सरस्वती, वेदपुराणादयश्च रघुनाथस्यैव गुणानि कीर्तयन्ति। भवानपि अहरहः सादरं राम-रामेति जपति। किं सोऽयं रामः दशरथापत्यः ? आहोस्वित् अजन्मागोचरो निर्गुणश्च कश्चिद्रामचन्द्रः वर्तते ? तदुक्तं गोस्वामिपादेन—

प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहुं ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुनगाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥
राम सो अवधनृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥
जौ नृपतनय त ब्रह्म किमि नारि बिरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥ इत्यादि

भक्तिभूषण भाष्य—

वेदान्त दर्शन में उस ब्रह्मका वर्णन किस प्रकार हुआ है? आदि ब्रह्मविषयक रहस्य इस ग्रन्थमें पूर्णतः विवेचित है। इस प्रकार ब्रह्म अर्थात् "अथातो रामजिज्ञासा" भगवती पार्वती ने भूतभावन भगवान् श्रीशिव से श्रीरामचरितमानस में पूछा है। निर्गुण ब्रह्म किस प्रकार सगुणत्व को प्राप्त होता है? यह सब

विचार कर मुझे प्रबोधित करनेके लिये आपकी मेरे ऊपर महती कृपा होगी । कलिपावनावतार गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने इस ब्रह्मविषयक जिज्ञासा को घाट रूपमें उपस्थापित किया है **"सुठि सुन्दर सम्वाद वर०"** इत्यादि वचनसे 'घट चेष्टायाम् धातु से घाट शब्द की सिद्धि होती है । इस श्रीराम कथा को बुद्धिसे विचार कर भूतभावन भगवान् शिव ने कही । शिव-पार्वती के मध्य, याज्ञवल्क्य और भरद्वाज के मध्य, काकर्षि और श्रीगरुड़जी के मध्य तथा तुलसीदास और सन्तों के मध्य जो सम्वाद हुए हैं, वही चार घाटोंके रूपमें यहाँ प्रसिद्ध हैं। अतिमनोहर श्रीराम चरित्र सरोवर के इन घाटों पर निर्गुण–निर्बाध तथा एकरसत्व का वर्णन हुआ है,वही इस सुन्दर जल का गहन,गभीर ब्रह्मतत्त्व है । पर्वतों में श्रेष्ठ और रमणीय कैलाश श्रीशिवपार्वती का नित्य विहारस्थल है । उस पर्वतपर अनेक तपस्वी, योगि,मुनि, देव और किन्नरोंके समूह निवास करते हैं । वे सब पुण्यतम हैं, जो आनन्दकन्द महादेव की नित्य सेवा करते हैं । उस पर्वत पर स्थित वट की छाया में एक बार भगवती पार्वती के हृदय में ब्रह्मजिज्ञासा उदय हुई । वह सविनय श्रीशंकरजी के समीप गयीं । भूतभावन श्रीशिवजी ने स्वकीय प्रेयसी समझकर उन्हें बहुत आदर प्रदान किया और वामभाग में आसन दिया ।

श्रीशंकरजी पार्वतीजी से पूछती हैं कि प्रभो ! जो परमार्थ-तत्त्व ब्रह्मके ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी मुनिजन हैं, वे श्रीरामचन्द्रजी को अनादि निधन ब्रह्मतत्त्व स्वीकार करते हैं । शेष, सरस्वती,वेद

पुराण आदि श्रीरघुनाथजी के ही गुणों का कीर्तन करते रहते हैं। आप भी अहर्निश और सादर "श्रीराम, श्रीराम" ऐसा जप किया करते हैं। तो क्या वे राम श्रीदशरथापत्य हैं? अथवा वह अजन्मा, अगोचर और निर्गुणनामधारी कोई रामतत्त्व हैं? गोस्वामीजी ने इसे **"प्रभु जे मुनि"** इत्यादि पंक्तियों में कहा।

ब्रह्म श्रीराम का परमपावन सुयश ही जलराशि है, और घाट के विना सरोवर की शोभा नहीं होती। अतः जैसे सरोवर को सुन्दर और मनोहर बनाने के लिये सुरम्य घाटोंका निर्माण होता है उसी प्रकार श्रीरामचरितमानस में चार सम्वाद ही 'चार घाट' हैं। ब्रह्मलक्षण और स्वरूपको सर्वजनहिताय बनाने हेतु इन घाटों की परिकल्पना में सन्त शिरोमणि गोस्वामीजी महाराज का यह रूपक सर्वथा विलक्षण है। उत्तम सरोवर में प्रायः ४ घाट होते हैं। १–राजघाट, २–पञ्चायतीघाट, ३–पनघट अथवा स्त्रीघाट, ४–गऊघाट।

१–राजघाट–इस घाट पर राजपरिवार अथवा विशिष्ट लोग स्नान करते हैं। उसी प्रकार यहाँ शिव–पार्वती सम्वाद "ज्ञानघाट" जिसमें उत्तम कुल में उत्पन्न षोडश संस्कार सम्पन्न अधीत वेदवेदान्त और श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदिसे सम्पन्न को ब्रह्मज्ञानरूप ज्ञानघाट पर अधिकार प्राप्त है। उनके लिये गोस्वामीजी ने कहा—

रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥

माता श्रीपार्वती की ज्ञानविषयक जिज्ञासा हुई थी—

प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपु धारी॥

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।

सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

अतः शंकरजी ने भी यहीं से प्रारम्भ किया—

झूठेउ सत्य जाहिं बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥

जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

बँदउँ बालरूप सोइ रामू। सब बिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥

२–पञ्चायतीघाट–यह घाट सर्वसाधारण के लिये होता है, इसी प्रकार यहाँ सगुण लीला कथा का वर्णन सम्पूर्ण मनोमल को धो डालता है। कर्मकाण्डसे चित्तशुद्धि होती है, वहीं श्रीरामचरितमानस की कथा का महत्त्व है—

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी।

यहाँ इस कर्मकाण्ड घाट के वक्ता महर्षि याज्ञवल्क्य और श्रोता श्रीभरद्वाजजी है। प्रयागराज में यह कथा हुई है। इसमें पञ्चदेवोपासना की चर्चा है।

३–पनघट वा स्त्रीघाट–इसमें सती–साध्वी नारियाँ स्नान करती हैं, पुरुषोंका प्रवेश नहीं। जगत्पतिको परमरक्षक के रूपमें वरण कर उन्हीं की अनन्यभाव से उपासना करना भक्तियोग है। भगवान् श्रीमुख से अनुग्रह करते हैं—

वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा। श्रीमद्०९।४।६६

अर्थात् राजा अम्बरीष की भाँति मेरे उपासक भक्तियोग द्वारा मुझे वशमें कर लेते है, जैसे अनन्य पतिव्रता नारी अपने

सज्जन पति को वशमें किये रहती है। इस प्रकार भगवान् के नाम, रूप, लीला और धाम की मधुरता और शीतलता उपासक को ही प्राप्त होती है, अतः अनन्य उपासना और भी दृढ़ हो जाती है। काकभुशुंडि में उपासना की दृढ़ता है। काक के शरीर में निरन्तर श्रीरामकथा प्रेम पूर्वक कहते रहते हैं– अतः **उपासनाघाट** के वक्ता श्रीकाकर्षि और श्रोता श्रीगरुडजी हैं। उपासकों के लिये श्रीरामचरित्र की फलश्रुति यह है—

प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥

४–गऊघाट–यह सुगम और सरल घाट होता है। इस घाट पर लूले–लंगड़े, निर्बल-दुर्बल, दीन–हीन सब कोई सरलता से पहुंच सकते हैं। कोई प्रयास नहीं करना पड़ता और न फिसलने का ही भय रहता है।

अतः यह यहाँ प्रपत्ति अथवा दीनघाट कहा गया है। गोस्वामीजी की दीनता ही प्रसिद्ध है। कर्म, ज्ञान और उपासना आदि साधनोंसे हीन प्राणीको ही दीन कहा गया है। गोस्वामी-जीके श्रीरामजीको दीन ही परमप्रिय हैं। अतः वह तीनों उपर्युक्त साधनों से ऊपर उठकर दीन घाट पर पहुँचते हैं—

करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञानविहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाइगो रामदुआरे दीन॥

अतः वे अन्त में यही माँगते हैं—

मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर॥

यह तुलसीदास और सन्तों का सम्वाद गऊघाट है । संक्षेप में यही कहना है कि गोस्वामीजी ने ब्रह्मसूत्रोक्त ब्रह्मजिज्ञासा को इन चारघाटों के माध्यम से वेदान्तवेद्य श्रीरामचरित्र का प्रतिपादन किया है ।

हरिभाष्यम्–

ब्रह्म यदुपनिषत्सु प्रतिपादितं तत्तु वाचामगोचरम् । न तत्र चक्षुरिन्द्रियायनम् । न हि श्रोत्रेन्द्रियं प्राप्तपराक्रमम् । अतस्तस्य मानसमेव शरणम् । वस्तुतो मूकगुडायितं ब्रह्म, तद्वद् ब्रह्मणो प्रत्यक्षकर्त्ता न कोपि ब्रह्मविवरणस्य सामर्थ्यं भजते इत्यनेनैव सन्तोष्टव्यम् । तद्ब्रह्म साकारं निराकारं वेति चिन्तापि न विचिन्तनीया । अदृश्ये वस्तुनि कः कथं जिह्वां व्यापारयेत् ।

भक्तिभूषण भाष्य–

जो ब्रह्म उपनिषदों में प्रतिपादित है, वह तो वाणी से अगोचर है । न वहाँ तक चक्षु की गति है और न श्रोत्रेन्द्रिय का ही पराक्रम पहुँचने का है । इसलिये उस ब्रह्म के रहस्य को जानने के लिये श्रीरामचरितमानस ही शरण है । अथवा उसका चिन्तन, मनन ही शरण है। ब्रह्म वस्तुतः मूकगुडायित है अर्थात् जैसे गुड आदि का स्वाद वाणीसे नहीं कहा जा सकता है,उसी प्रकार ब्रह्मसुख अनुभव का विषय है, वर्णन का नहीं । केवल अनुभव से सन्तोष कर लेना चाहिए । जिसका दर्शन नहीं हो सकता तो कौन और कैसे जिह्वा का व्यापार करे ।

हरिभाष्यम्–

अतो हेतोः श्रीसम्प्रदायाचार्यैः श्रीमद्भगवदाचार्यैः स्वकीये विशिष्टाद्वैतदर्शने सूत्रितम्–"परः श्रीरामः (३।२।३) । पालन–

पूर्णत्वाच्च परः श्रीराम उच्यते । पृ पालनपूरणयोः पिपर्ति सकलं जगदिति परः । अस्मात् कारणात् सकलजीवानां रमणस्थानं हि सः । रमते सर्वस्मिन् जगति रमयति वा निखिलं जगदिति रामः ।

स च निखिलावतार कारणभूतोऽवतारी न चावतारः, अत एव परः । वाल्मीकि संहितायाम्–

'परो हि भगवान् रामः परे लोके विराजते' । अतः सकलावतार हेतुभूतः परस्मिल्लोके विराजमानः श्रीराम एव परः । रामशब्दस्य पूर्वे 'श्री' शब्दस्य योगः रामस्य नित्यशक्तेर्नामाभिधानम् । सा शक्तिः कदापि शक्तिमतः रामात् पृथग्न स्थीयते इति ।

भक्तिभूषण भाष्य–

इसलिये श्रीसम्प्रदायाचार्य जगदगुरु रामानन्दाचार्य स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज ने स्वकीय विशिष्टाद्वैत दर्शन में सूत्र लिखा है–**परः श्रीरामः (वि०द० ३।२।३)** पालन करनेसे और पूर्ण होने से परतत्त्व श्रीराम कहे गये हैं । "पृ पालन पूरणयोः" धातु से **पिपर्त्ति सकलं जगत्** इस व्युत्पत्ति 'पर' कहा गया है । इस कारण से सकल जीवों के रमण स्थान श्रीराम ही हैं । राम शब्दका अर्थ है–चराचर जगत्में जो रमण करे अथवा निखिल जगत् को जो रमण करावे, वह राम है । और वही निखिल अवतारोंके कारणभूत अवतारी हैं न कि अवतार, अतः परतत्त्व हैं । वाल्मीकि संहिता में कहा गया है—

परो हि भगवान् रामः आदि, भगवान् राम परतत्त्व हैं और पर अर्थात् त्रिपाद्विभूति में विराजमान हैं । अतः सकल

अवतारों के हेतुभूत परलोक में विराजमान श्रीराम ही पर हैं। उक्त सूत्रमें रामशब्द के पूर्व जो श्री शब्द का प्रयोग हुआ है वह राम शब्द की नित्य शक्ति का वाचक है। वह शक्ति कभी भी शक्तिमान् राम से पृथक् स्थित नहीं है।

श्रीरामचरितमानस के मङ्गलाचरण में कहा गया है कि अशेष कारणों से परे श्रीराम नामसे प्रसिद्ध हरि की मैं वन्दना करता हूँ—

वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।

श्रौतप्रमेय चन्द्रिकामें—

जगद्धेतुः परब्रह्म श्रीरामः सकलेश्वरः।
दिव्यदेहगुणः पूर्णः पञ्चधावस्थितो गतः॥
मम प्रकाराः पञ्चैते प्राहुर्वेदान्तपारगाः।
परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम्॥

अर्थात् दिव्यदेह और गुणों से पूर्ण अखिल कोटि ब्रह्माण्ड-नायक तथा जगत् के हेतु परब्रह्म श्रीराम पर व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार रूपसे स्थित हैं। पाञ्चरात्रागम आदि ग्रन्थों में इस तत्वका विशेष वर्णन है। रामतापनीय उपनिषद् के अनुसार सभी भगवन्नामोंमें श्रीराम नाम परब्रह्मका वाचक है।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
तेन रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते॥

हरिभाष्यम्—

एतद् ब्रह्मजिज्ञासा विषये किञ्चिदन्यदपि प्रासङ्गिकं गवेषणीयम्। शास्त्रेषु प्रायेण सर्वत्रैव सर्वस्याधिकारमीमांसा

दृश्यते। ब्राह्मणेनेदं कर्त्तव्यम्, क्षत्रियेणेदमाचरणीयम्, वैश्येनेत्थं व्यवहर्त्तव्यं, शूद्रेणेत्थं वर्त्तितव्यम् इति।

इत्यत्र विचार्यते ब्रह्मजिज्ञासापि नियताधिकारा एवानियताधिकारावेति। किं प्राप्तं तावत्? नियताधिकारा इति। कस्मात्? तस्याः शास्त्रैकगम्यत्वात्। शास्त्राणि च नियताधिकाराणि। ब्राह्मणक्षत्रियविडतिरिक्तस्य कस्यापि वेदादिषु नाधिकारः श्रूयते स्मर्यते वेति। सर्वाधिकारेति तु तत्त्वविदः। 'श्रोतव्यं श्रुतिवाक्येभ्यः इत्युक्त दिशा यद्यपि ब्रह्मजिज्ञासायां श्रुतेर्नैयत्यं तथापि सा सर्वाधिकारैव। यदि सर्वजनीनो हि सर्वेश्वरो न नियताधिकारः कथं वेदाः परिमिताधिकारा भवितुमर्हन्ति।

भक्तिभूषण भाष्य–

इस ब्रह्मजिज्ञासा के विषय में कुछ और भी प्रासङ्गिक अन्वेषण करना चाहिये। प्रायः करके शास्त्रोंमें सर्वत्र ही सबके अधिकार की मीमांसा देखी जाती है कि ब्राह्मणका यह कर्त्तव्य है। क्षत्रियको यह आचरण करना चाहिये। वैश्यको इस प्रकार व्यवहार करना चाहिये। शूद्र को ऐसा रहना चाहिये।

यहाँ विचार किया जा रहा है कि ब्रह्मजिज्ञासा भी नियताधिकारा ही है अथवा अनियताधिकारा भी। प्र०–क्या प्राप्त हुआ ? उ०–नियताधिकारा है। प्र०–कैसे ? उस जिज्ञासा का मात्र शास्त्र ही आधार है। और शास्त्र तो नियताधिकार हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अतिरिक्त किसी का वेदादि में अधिकार नहीं है, ऐसा सुना जाता है और अनुभव भी होता है।

तत्त्वविद् सर्वाधिकार कहते हैं। "श्रोतव्यं श्रुतिवाक्येभ्यः" इस निर्देश से ब्रह्मजिज्ञासामें यद्यपि श्रुति की नियताधिकारिता है, तथापि वह सर्वाधिकारा ही है। यदि सर्वजनीन सर्वेश्वर ही नियताधिकार नहीं है तो कैसे वेद भगवान् परिमित अधिकार हो सकते हैं। ❀

सर्ववेदमयी गीताजी में तो सभीके कर्त्तव्यों का निर्देश है—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्मस्वभावजम्॥
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्य कर्मस्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म, स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा विभक्त किये गये हैं। यथा—

शम, (अन्तःकरण का निग्रह) दम, (इन्द्रियों को वश में रखना) तपस्या (धर्मपालन में कष्ट सहना) शौच (अन्तःकरण के साथ शरीर और क्रियाशुद्धि) क्षान्ति (दूसरे के अपराध को

❀ विशेष ज्ञान के लिये "श्रीसम्प्रदाय मन्थन" में वर्णित आचार्यश्री के लेखों का अध्ययन करना चाहिये।

क्षमा कर देना) आर्जव (सबके प्रति सरलता) आस्तिकती वेद शास्त्रादि ग्रन्थों का अध्ययन और अध्यापन द्वारा परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेना ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

शूरवीरता (आतमबल की अधिकता) तेज, धैर्य, चतुरता, युद्धभूमि से न भागना, दानवीरता और ईश्वरभाव [न्याययुक्त दण्ड देना, स्वाभिमान से सदा उत्साहित रहना, कृपण न होना] ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि विभाग, व्यापार विभाग और गौ इत्यादि पशुपालन विभाग का कार्य स्वाभाविक रूपसे वैश्य कर्म के आधीन है।

शूद्र का स्वाभाविक कर्म तीनों वर्णों की सेवा है।

उपर्युक्त लक्षणों में सिद्धान्त निरूपित है। चारों वर्णों के परस्पर समन्वय, सहयोग और नीति–प्रीतिके बलसे इस समाज रूपी शरीर का सही संचालन हो सकता है। स्वधर्मका पालन एक तपस्या है और वह आज के भौतिक और राजनीतिक युग में उपहासास्पद ही लगता है। यदि विचार कीजिये तो आज भी इन्हीं स्मृतियों का अक्षरशः पालन हो रहा है। अन्तर यही है कि जो जन्मना अधिकार था, वह कर्मणा होने लगा है।

शिक्षा और न्यायविभाग मस्तिष्क प्रधान है, यही ब्राह्म-कर्म था। रक्षा और दण्डविभाग बाहुबल प्रधान है, यह क्षत्रिय कर्म है। कृषि, पशुपालन और व्यापार विभाग वैश्य का स्वा-भाविक कर्म है। श्रमके अन्तर्गत आने वाले विभाग कला कौशल आदि शूद्र कर्म हैं।

वर्तमान सरकार यदि आरक्षण की भाँति इन्हीं विभागों को जन्मना घोषित कर अनिवार्य बना दे तथा बड़े-बड़े उद्योग पतियों और राजनेताओं के देश-विदेश में पड़े हुए कालेधनको राष्ट्रहित के समुचित विकास हेतु समर्पित कर दे तो निश्चित है कि यह देश सभी देशों में प्रथम सम्पन्न राष्ट्र हो जायेगा।

स्वकर्म और स्वधर्म पालनके बिना राष्ट्र कभी भी बहुमुखी उन्नति नहीं कर सकता। आजके युगमें इसी सत्यता की कमी है। इस युग में परस्पर विश्वास की कमी होती जा रही है। चाहे वर्तमान राजनीतिक क्षेत्र हो चाहे धार्मिक क्षेत्र हो। इस भाई, भतीजावाद और स्वार्थवाद से देश जर्जर होता जा रहा है, हन्त ! अतः सदा इस जगत्में कर्म का महत्त्व रहा है। जाति परिवर्तन और कर्मपरिवर्तन से कोई महत्वाकांक्षी महत्त्व नहीं प्राप्त करता है। कबीरदासजी जुलाहे का कार्य करते थे, उन्होंने अपना कर्म नहीं छोड़ा, अतः उन्हें भगवत्साक्षात्कार हुआ। रविदासजी की यही कहावत प्रसिद्ध है-- **"जो मन चंगा तो कठवती में गंगा"**।

जिस काष्ठ के पात्र में वह चमड़ा भिगोते थे, उसी में गंगा की पावन धारा प्रवाहित हो गयी थी और गंगा में डूबा रानी का हार उसी में आ गया था।

महाभारत के शान्तिपर्व २६१ से २६४ तक एक सुन्दर कथा है। काशी में एक तुलाधार नाम का व्यापारी था। सत्य और न्यायपूर्वक वह अपने वैश्य कर्म में संलग्न था। उसे अपने

कर्म में ही तपस्या और धर्म दिखाई देता था। समुद्र के तट पर जाजलि नामक एक ब्राह्मण तपस्या कर रहा था। उसकी जटाओं में पक्षियों ने घोसला बना लिया था, जिसकी उन्हें परवाह नहीं थी। अपनी इस तपस्या से उन्हें गर्व हो गया। उन्हें आकाशवाणी हुई कि तुम काशीवासी उस तुलाधार नामक वैश्य के समान धार्मिक नहीं हो। तुम्हें गर्व हो गया, उसे नहीं।

यह सुनकर वह काशी में उस वैश्य के घर आया तो देखता है कि वह घी, तेल, मशाला आदि बेच रहा है। उस वैश्य ने ब्राह्मण को प्रणाम किया और कहा कि समुद्रके किनारे आपने ऐसी घोर तपस्या की, जिससे पक्षियों ने आपकी जटाओं में घोसला बना लिया। इसका गर्व हो जाने से आप आकाशवाणी का श्रवणकर मेरे पास पधारे हो। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? यह सुनकर उस ब्राह्मणको बहुत ही आश्चर्य हुआ और उस वैश्य ने उसे धर्म का उपदेश दिया, जिससे जाजलि सन्तुष्ट हुये।

राजनीति की रोटी सेंकने वाले आज के कुछ मन चले लोग कहते नहीं थकते कि क्या वेदशास्त्रका ज्ञान केवल ब्राह्मण जाति की बपौती है? लेकिन उसकी दुरूहता (कठिनता) पर कभी भी वे विचार नहीं करते। आज की औद्योगिक शिक्षा के लिये सरकार कितने धन का व्यय कर रही है। कितने संसाधन जुटा रही है, किन्तु फिर भी वर्तमान शिक्षा का स्तर कैसा है, इससे सभी परिचित हैं।

वेदाध्ययन के पूर्व वेदाङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और व्याकरणशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता होती है। मात्र मन्त्रों को कण्ठ कर लेना, वैदिक अथवा वेद-ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। जबतक मन्त्र और मन्त्रार्थ दोनों का ज्ञान न हो। तब तक शास्त्रज्ञान निरर्थक है।

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्॥

—व्याकरण महाभाष्य

अर्थज्ञान के बिना मात्र शब्दोच्चारण करना नगारे की ध्वनि के समान है। उसका कोई अर्थ नहीं होता,जैसे अग्नि के बिना सूखी लकड़ी में जलने की क्षमता नहीं होती है।

आजकल सम्पन्न व्यक्ति ऐसी विद्या चाहता है जिससे दिन दूनी रात चौगुनी लक्ष्मी महारानी का दर्शन मिला करे। जिनका कोई आधार नहीं,ऐसे कुछ धनहीन और अत्यन्त विपन्न अथवा यजमानिका वृत्ति वाले ब्राह्मणों की विद्या कुछ कर्मकाण्ड तक सीमित रह गयी है। उसमें भी कभी-२ आत्म-ग्लानि का अनुभव होता है, जिस समय लखपति यजमान की कंगाली वृत्ति पूजा के समय देखी जाती है। उस समय यही याद आता है-
उपरोहित्य कर्म अति मन्दा। वेद पुरान सुमृति कर निन्दा॥

मृत्यु लोक में निर्धारित १०० वर्षों की आयु में ब्राह्मण को २६ से ५० वर्ष कक की अवस्था तक सांसारिक सुख प्राप्त करना चाहिये। ७५ वर्षों तक वनवासी जीवन बिताना चाहिये, जैसा कि पूर्व में आश्रमों की विवेचना की गयी है।

तो जिन ऋषियों ने वेदों का साक्षात्कार किया, उन्हीं लोगों ने उनके रहस्य–विभाग का निरूपण किया और उन्हीं लोगोंने ही धर्ममार्गमें विधि और निषेधकी आचरण संहिताओं की रचना की, उन्हीं लोगों ने ईश्वर संकलिपित और आज्ञापित, सत्यापित शास्त्राज्ञा को मनुष्य के लिये अनिवार्य बतलाया। इसके पालन से हम पशुता से मानवता की ओर जाते हैं। इसीलिये श्रीस्वामीजी महाराज ने कहा—

शास्त्राणि च नियताधिकाराणि इति।

अतः जैसे अङ्गके बिना शरीर (अङ्गी) का कोई अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार शास्त्रके बिना वेदज्ञान भी निरर्थक ही होता है। श्रीभगवान् गीताजी में कहते हैं—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न पराङ्गतिम्॥

जो शास्त्रों में बताई गयी विधि का त्याग कर मनमानी आचरण करता है,वह न सिद्धि पाता है, न सुख और न परमपद की ही प्राप्ति कर पाता है। अतः शास्त्र निश्चित ही वेदप्रतिपादक हैं। **प्रश्न** यदि वेद को शास्त्र के अनुसार नियताधिकार न मानें, अर्थात् इसके अध्ययन में सभी का अधिकार मान लें, तो भी कोई अनुचित न होगा? यह किसीका मत है। नियताधिकार होते हुये भी सर्वाधिकार कहा जाना चाहिये। जैसे भगवान् सर्वेश्वर अवताररूप में गीध, शबरी, गज आदि सभी को सुलभ हो जाते हैं। तो इसका समाधान यही है कि जैसे

निर्गुण, निराकार परमात्मा जो अज, अव्यक्त है, अतः सर्वजनीन नहीं है,उसी प्रकार वेद वेदान्त के लक्षणा और व्यञ्जना युक्त वाक्य सर्वसाधारण के लिये दुर्गम हैं ।

अतएव वह माया के आश्रय से अपनी कलाओं द्वारा अवतरित होकर सबके लिये सुलभ हो जाता है । अवतार चरित्रों द्वारा ही जगत् की मर्यादा, चरित्र,धर्म और सदाचार का प्रकाश होता है । ठीक इसी प्रकार वेदोंकी ही व्याख्या पुराण इतिहास धर्मशास्त्र है । वेदों के तात्पर्य इन्हीं ग्रन्थों के अध्ययन से सुलभ हो जाते हैं ।

भारतीय संस्कृति में धर्म और आस्था के केन्द्र जैसे देव-मन्दिर भी हैं और गंगा आदि नदियाँ भी, किन्तु मन्दिर प्रवेश में विधि-निषेधका नियताधिकार प्राप्त है । पुजारी के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक प्रवेश वर्जित है । दूसरी ओर नदियोंके निर्मल जलप्रवाह को देखो । उसमें प्रवेश करो । तन मन और वस्त्र आदि सबकी शुद्धि कर लो । वहाँ कोई विधि-निषेध नहीं है । वह सभी का आह्वान करती है । तुम मलिन हो तो भी आओ, दरिद्र हो तो भी आओ । चाहे जिस धर्म, सम्प्रदाय के हो तो भी आओ । नास्तिक अथवा दुराचारी कुछभी हो,आओ तुम्हारा स्वागत है । वह नहर के रूप में गृह, कृषि तक के लिये भी लाभकारिणी है ।

किन्तु यह ध्यान रहे कि वेदशास्त्र विहित कर्म और धर्म के त्याग से सभी मनमुखी कार्य निष्फल हो जाते हैं । भगवान्

श्रीराम ने मृत्युलोक की सामान्य मर्यादा से ऊपर होकर गज, गीध, शबरी आदि के लिये अपने विशेषाधिकार का प्रयोगकर अध्यादेश संचालित कर दिया, क्योंकि वह जटायु भी अन्तिम श्वास तक अपने कर्तव्यमें दृढ़ रहा था। इसलिये भगवान् अनुग्रह करते हुये कहते हैं—

जल भरि नयन कहत रघुराई। तात कर्म निज ते गति पाई।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह-तुम पूरन कामा॥

उसके उपकार से कृतज्ञ श्रीरामजी के राजीवनयन खिल गये और अखिल कृपा-सुधा की वर्षा से मांसभक्षी का जीवन कृतार्थ कर दिये। गोस्वामीजी ने कहा—

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाचत जोगी॥

अतः यह स्पष्ट है कि वेद सामान्यधर्म के प्रतिपादक हैं। यह भगवत्प्राप्ति के साधन हैं, किन्तु उस असीम तक उनकी भी गति नहीं है। क्योंकि वे नियताधिकार हैं, यह अर्थ निश्चित हुआ। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—

नाहं वेदैर्न तपसा न ज्ञानेन न चेज्यया।
शक्यमेवंविधो द्रष्टुँ दृष्टवानसि मां यथा॥

अर्जुन! जिस शरणागति पूर्वक तूने मेरे दिव्यरूपका दर्शन किया है, इस प्रकार न मैं वेदों के ज्ञान से, न तपस्या से, न ब्रह्मज्ञान से और न यज्ञ-यागादि से सुलभ हो सकता हूँ। केवल भक्ति ही मुझे स्नेहबन्धन से बाँध सकती है। महाराज मनु के शब्दों में—

नेति नेति जेहि वेद निरूपा । निजानन्द निरुपाधि अनूपा ॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीलातनु गहई ॥

इत्यादि पंक्तियों में भक्तियोग की विलक्षणता है, अतः वह विशेष मानी गयी है ।

प्र०–तो क्या वेदज्ञान निरर्थक है ? **उ०**–नहीं । वेद ही आदिम ज्ञान के श्रोत हैं । ज्ञान,कर्म,उपासना और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक आदि सभी रहस्य सूक्ष्मरूप से वेदों में निहित हैं । वेद बीज है और सभी ग्रन्थ शाखा, पल्लव, फल--फूल आदि हैं। जैसे स्वर्णमय आभूषण धारण करने के पश्चात् उनकी खानि निरर्थक नहीं होती है । नवनीत मिल जाने के बाद जैसे गौ आदि निरर्थक नहीं हैं। जैसे दीक्षान्त समारोहके पश्चात् विद्यालय और अध्यापक निरर्थक नहीं सिद्ध होते, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान अथवा भगवत्प्राप्ति के पश्चात् वेद भगवान् निरर्थक नहीं होते हैं । अवतारों का अन्वेषण श्रुतियाँ ही करती हैं, अन्यथा कौन जानता कि अवतारतत्त्व क्या है ? जिस पत्थर की मूर्त्ति पर वेद भगवान् की मुहर लग जाती है, वह सत्यापित हो जाती है । उसमें भी चेतनता आ जाती है । उनके दर्शन और वन्दन से आत्मतोष प्राप्त होता है ।

जिस अवतार को वे प्रमाणित कर देते हैं, वह संसार में आस्तिक जनों की आस्था का केन्द्र बन जाता है । युगग्रन्थ श्रीरामचरितमानस में स्थल-२ पर वेदों का ही स्मरण किया है । वेदनिन्दकों की अवहेलना करते हुए गोस्वामीजी महाराज ने भगवान् बुद्ध तक को कह दिया—

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार ।
जेहि निन्दत निन्दित भये प्रगट बुद्ध अवतार ॥

इसीलिये इस संसार का नास्तिक भी अपने को वेदों के प्रमाण से प्रमाणित करता है । नवीन-नवीन मत-मतान्तर सम्प्रदाय के रूप में उभरकर आज अपने को वैदिक कहने का आत्मगौरव प्राप्त कर रहे हैं, भले ही कोई अर्धनास्तिक हो अथवा पूर्ण नास्तिक । कल्पतरु के समान वेद भगवान् की यही अपूर्वता और रमणीयता है ।

"जिज्ञास्यं च ब्रह्म निर्विशेषमित्येके । "यत्तद्रेश्यमग्राह्यम-गोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययम्" (मु०उ० १।१६) "निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्" (श्वेत०उ० ६।१९)इत्याद्युपनिषदक्षराक्षरवर्णनात् । स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्(शु०य०४०।८)इत्यादि मन्त्रवर्णाच्च।

सविशेषं तदित्यन्ये । "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मात-रिश्वानमाहुः ।" (ऋ० १।१६४।४६) दीर्घतमसो दिव्यैश्वर्य-विशिष्टत्वादिन्द्रत्वं दीनेषु स्निग्धत्वान्मित्रत्वं वरणीयत्वात्पाप-शापतापतापकत्वाद्वा वरुणत्वं सर्वेषामुपासकानां साशाभिलाष-पूरकत्वात्सुपर्णत्वं सर्वसृष्टि निगरणसामर्थ्यवत्त्वात्तल्लीनात्मनो-नजनमानस्त्यान्स्तावकत्वाद्वा गरुत्मत्वं सर्वनियामकत्वाद्यमत्वं सर्वविकारावकार पूर्वकाधिकारावाप्त संस्कारसत्कारवतां भक्तिमतां हृदयेषु वर्धनशीलत्वं चेत्यादि विशेषणानां ब्रह्मण्येव प्रतिपादनात्

(स्वामि भगवदाचार्यः)

इतिश्रीमज्जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिश्रीहर्याचार्यविरचित-हरिभाष्यभासिते भगवद्वेदव्यास प्रणीतब्रह्मसूत्रे जिज्ञासाधिकरणम् ।

भक्तिभूषण भाष्य–

निर्विशेष ब्रह्म जिज्ञासा के योग्य है, एक यह मत है। इस मत में भी अनेक श्रुतिप्रमाण उपलब्ध हैं। यथा–**यत्तद्रेश्यम्**-चक्षु, श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियजन्य ज्ञान के विषय का अभाव, **अग्राह्यम्**– वाक्पाणि आदि कर्मेन्द्रिय व्यापार का अविषय। **अगोत्रम्**–कुलरहित, **अवर्णम्**–ब्राह्मण क्षत्रियादि तथा शुक्लनील पीतादि वर्णों से रहित, **अचक्षुः श्रोत्रम्**–नेत्र और कान से रहित। **नित्यं**–विनाश से शून्य, **विभुम्**–सर्वशक्तिमान्, **सर्वंगतम्**–अपने से अतिरिक्त सम्पूर्ण चित्-अचित् और स्थूल-सूक्ष्मपदार्थोंके अन्दर और बाहर भी व्याप्त, **सुसूक्ष्मम्**–सूक्ष्मतम, **तदव्ययम्**–पूर्वोक्त अक्षरतत्त्व, जिसका न व्यय हो और न बृद्धि हो। **धीरा यद्-भूतयोनिं परिपश्यन्ति**–विवेकीजन उस उपादान कारण का दर्शन कर लेते हैं। यह पूरा मन्त्रार्थ है। [मु०उ० १।१६]

ब्रह्म गुण रहित, क्रिया रहित, शान्त, निर्दोष तथा निर्लेप है। [श्वेत० ६।१६] इत्यादि उपनिषदोंके वर्णन से।

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम् [शु०य० ४०।८] सः पर्यगात्० पूर्व में कहे गये सर्वव्यापी आदि गुणों से युक्त परमात्मा को जो सर्वत्र देखता है, उसे उस परमात्मा की प्राप्ति होती है। वह कैसा है ? **शुक्रम्**–परम तेजोमय, **अकायम्**– अस्थिमांस आदि

से युक्त शरीर से रहित, **अव्रणम्**–फोड़ा, फुन्सी आदि से रहित, इत्यादि मन्त्रों द्वारा निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है।

वह ब्रह्म सविशेष है, यह भी एक सिद्धान्त है। इसके प्रमाण में '**इन्द्रं मित्रम्०**' [ऋ० १।१६४।४६] यह मन्त्र दर्शाया गया है। अपने वैदिक भाष्य में स्वामीजी ने इसका अर्थ भी कर दिया है, यथा—

"वह परमात्मा दिव्य ऐश्वर्य से सम्पन्न होने से इन्द्र की पदवी धारण करता है। दीनों पर स्नेहिल दृष्टि होने से मित्र की पदवी धारण करता है। वरण करने योग्य और पाप, शाप, ताप को शमन करने से वह वरुण है। सभी प्रकार के उपासकों की सम्पूर्ण अभिलाषाओं के पूरक होने से वह सुपर्ण कहा जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि को महाप्रलय में परिणत करने में और उसके धारण, पोषण में सामर्थ्यवान् होने से गरुत्मान् कहा जाता है। सभी का नियमन करने से वही यम है। सभी विकारों से रक्षापूर्वक सम्पूर्ण संस्कारों के अधिकार प्राप्त करा देने से तथा उन संस्कार सम्पन्न भक्तिमान् भक्तों के हृदय में सद्गुणों के वर्धन करने से वह ब्रह्म कहा जाता है।"

इस प्रकार इस प्रद्यट्टक में अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत इन दोनों सिद्धान्तों को उपस्थापित किया गया है।

अद्वैतवाद–

इस मतमें ब्रह्म निर्विशेष अर्थात् सजातीय विजातीय स्वगत-भेद शून्य है। जीव और माया का अस्तित्त्व तब तक है जब

तक ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता। आत्माकी उपाधि नहीं है। अर्थात् उसे जीवात्मा और परमात्मा यह विशेषणयुक्त वचनों से नहीं कहा जाता है। वह एक और नित्यतत्त्व है। उसी को आत्मा, ब्रह्म आदि नाम से सम्वोधित किया जाता है। जिस प्रकार अनन्त आकाशमें एक ही सूर्यके प्रकाशसे अनन्त घटाकाश आदि प्रतिविम्बित है, उसी प्रकार ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ कल्पना है। कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड व्यावहारिक पक्ष है, सैद्धान्तिक नहीं। इस प्रकार वह शिव, अद्वैत और तुरीय का वाचक कहा गया है। श्रीमच्छंकराचार्यजी महाराज ने दशश्लोकीमें लिखा है-

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्त्येकसिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोहम्।
न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोहम्॥
न सांख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात् तदेकोवशिष्टः शिवःकेवलोहम्।

यह एकात्मवाद वस्तुतः बौद्धदर्शनके शून्यवाद का समाधान पक्ष कहा गया है। स्वामी शंकराचार्यजी के इसी अद्वैतवादको पूर्वपक्ष मानकर स्वामी मध्वाचार्यजी ने द्वैताद्वैतवाद की सिद्धि की। अनन्तर अचिन्त्य भेदाभेदवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत आदि अनेकवाद दर्शनों का विस्तार हुआ। रामानुजीय आचार्यों ने तो स्वामी शंकराचार्यजी महाराज को प्रच्छन्न बौद्ध तक कह डाला। इन दर्शनों की सत्यता यही है कि ब्रह्मतत्त्व को सभी

ने सत्य कहा है, केवल जीव और जगत् के विषय में सत्यासत्य का विवाद है। अद्वैततत्त्व सभी दर्शनोंमें व्याप्त है। सभी दर्शन अपना-अपना मन्तव्य अपनी-अपनी दृष्टि से कहते हैं। श्रुतियाँ भी कल्पद्रुम के समान फलदायिनी हैं। वे निर्विशेष और सविशेष दोनों का प्रतिपादन करती हैं।

विशिष्टाद्वैतवाद-

विशिष्टञ्च, विशिष्टञ्च विशिष्टे; तयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्।

अर्थात् स्थूल चित् [जीव] और अचित् [माया] से विशिष्ट तथा सूक्ष्म चित् और अचित् से विशिष्ट [सम्पन्न] ब्रह्म को विशिष्टाद्वैत ब्रह्म के नाम से कहा जाता है। इस सिद्धान्त में जीव और प्रकृति रूपी माया की ब्रह्म से पृथक् सत्ता नहीं है। उसमें भगवत्पारतन्त्र्य है। सूक्ष्म और स्थूल दोनों अवस्थाओंमें उसे ब्रह्म का वियोग नहीं है। विषयासक्तिके कारण वह ब्रह्मानन्द के सुख से वंचित है। जीव का एकमात्र लक्ष्य उसी सच्चिदानन्द की प्राप्ति करना है।

इस प्रकार पूर्वोक्त निर्दिष्ट निर्विशेष और सविशेष ब्रह्मवाचक श्रुतियां विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तमें गतार्थ हो जाती हैं।

यत्तद्रेश्यमग्राह्यम्... ...। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

अद्वैतवाद जिसे निर्विशेष ब्रह्म कहता है, विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तमें वही सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कहा जाता है, अन्यथा **परिपश्यन्ति धीराः** इस वचन की सिद्धि कैसे हो सकेगी? इसका

तात्पर्य यही है कि अनन्य उपासक धैर्य के साथ उस उपादान कारण का भी दर्शन कर लेता है। जो प्राकृत नेत्रों से दिखाई नहीं देता, भगवान् उसे दिव्यनेत्र प्रदान कर दर्शन करा देते हैं।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमैश्वरम् ।

महातपस्वी हिरण्यकशिपु, जिसने तीनों लोकों को वश में कर लिया था, उसने भक्तराज प्रहलाद से ब्रह्मजिज्ञासा की—

क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ।

यदि वह सर्वत्र व्याप्त है तो इस स्तम्भमें क्यों नहीं दिखाई देता। प्रह्लादजी ने उत्तर दिया, दैत्यराज ! मुझे तो यही दिखाई पड़ रहा है कि मानों मेरा राम श्रीनृसिंह रूपसे इसमें छिपा है और मुझे अभय प्रदान कर रहा है !

हिरण्यकशिपु ने कहा, मुझे भी दिखाओ। श्रीप्रह्लादजी ने कहा—तुम पहले उपासक बनो, तभी देख सकते हो। हिरण्यकशिपु को परम आश्चर्य हुआ कि बिना छिद्र वाले पत्थर के स्तम्भ में वह कैसे छिपा होगा ? उस समय एक आस्तिक और नास्तिक के मध्य चल रहे विवाद को समाप्त करने हेतु और अपने भृत्य के वचन को सत्य करने हेतु वेदान्तवेद्य सर्वशक्तिमान् श्रीनृसिंह के रूप में उसी स्तम्भ को ही योनि [कारण] मानकर अवतरित हो गये। श्रीमद्भागवतकार कहते हैं—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ।।

पूज्यपाद श्रीतुलसीदासजी महाराज उस झाँकी का दर्शन कर रहे हैं—

काढ़ि कृपान कृपा न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ' ? "सब ठाउँ हैं" खम्भ में ?
"हाँ" सुनि हाँक नृकेहरि जागे।
बैरी विदारि भये विकराल कहे प्रह्लादहिं के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे॥

हिरण्यकशिपु ने स्तम्भ में दृष्टिगोचर होने के लिये प्रह्लाद से जिज्ञासा की थी, इसीलिये भगवान् प्रह्लाद के हृदय से नहीं, बल्कि उसी निर्देशित और प्रार्थित स्तम्भ से प्रकट हुये। भगवान् श्रीनृसिंह ने यह सिद्ध किया कि मैं चेतन और हृदय-कमल में ही नहीं रहता अपितु भक्त मुझे जड़ और कठोर पत्थर से भी यदि प्रकट होने की आज्ञा दे, तो मुझे भृत्यानुकूल ही कार्य करना है-अतः **"सत्यं विधातुं निज भृत्य भाषितम्"** यह कहा गया।

इस प्रकार **परिपश्यन्ति धीराः** इस अन्तिम पाद में आशुतोष भगवान् के दिव्य विलक्षण सगुण साकार स्वरूप का दर्शन हो जाता है। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामीने आनन्द-भाष्य में कहा है--

विवेकिनस्तु प्रह्लादादय इव स्तम्भादिष्वपि भगवन्तं श्रीरामं साक्षात्कुर्वन्तीति भावः।

इसमें धीर का अर्थ विवेकी किया गया है। ऐसे विवेकी-जन प्रह्लाद आदिकी भाँति स्तम्भ आदिमें भी भगवान् श्रीराम जी का साक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं। ज्ञानीको यह सुख दुर्लभ

है। नाम और रूपके बिना ब्रह्म का किस रूपमें चिन्तन किया जाय? इसका समाधान आजतक कोई दार्शनिक नहीं कर पाया। अतः अन्त में हारकर मानना पड़ता है कि ब्रह्म नाम और रूपतत्त्व में विराजमान है।

अद्वैतवादी कनक और कुण्डल के उदाहरण से अपना पक्ष सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। वह कहते हैं कि स्वर्ण से कुण्डल आदि आभूषण बनते हैं; तो वह कुण्डल सोना ही है। उसका नाम और रूप समाप्त होनेके बाद वह मात्र स्वर्ण रह जाता है। अतः स्वर्ण पदार्थ नित्य है, आभूषण की आकृति अनित्य है। इस प्रकार विविध नामरूपात्मक जगत् आभास-मात्र है।

लेकिन श्रीवैष्णवदर्शन कहता है कि कारण के बिना कार्य नहीं होता है। रूप अर्थात् आकार का कभी विनाश नहीं होता है। घट के नाश हो जाने पर घट की आकृति का नाश नहीं होता है। जो कारण में नहीं, वह कार्य में भी नहीं आ सकता है। जैसे जिस जाति और आकार-प्रकार का बीज होता है, मिट्टी में बो देने पर वह बीज सड़ जाता है किन्तु शक्ति जो अंकुर के रूप में जन्म लेती है, उससे पूर्व की भाँति वृक्ष फल और स्वाद से पूर्ण हो जाता है। ठीक उसी प्रकार वह अव्यय बीज जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों है। जैसे एक संख्या के उच्चारण से अनेक संख्या का बोध होता है, एक के बिना अनेक की कल्पना नहीं। इस प्रकार जैसे एक में अनेक

छिपा है और अनेकमें एक छिपा है, उसी प्रकार ब्रह्म विशिष्टाद्वैत रूपसे अनेक में अनुगत है और अनेक उस एक विशिष्टाद्वैत में। यही **वटबीजन्याय** है।

माया जीव सुभाव गुन काल करम महदादि।
ईश अंकते बढ़त सब ईश अंक बिनु बादि॥

श्रीराम चरित मानस में यही कहा गया है। यथा–

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत विकार जान अधिकारी॥
तुम्हरिहिं कृपाँ तुम्हहिं रघनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चन्दन॥
सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई॥

तुम्हें जान लेने पर जीव तुम्हारा ही हो जाता है। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' में एवकार का यही तात्पर्य है कि वह अपने को तदाकार मानने लगता है। अन्त में पूज्यपाद श्रीतुलसीदासजी की दृढ़ प्रतिज्ञा है।

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु तुलसीदास॥ इति॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य चरणाश्रित
पं० रामदेवदास "श्रीवैष्णव" विरचित ब्रह्मसूत्र
हरिभाष्यभाषा–भावानुवाद एवं
भक्तिभूषण–भाष्य में
जिज्ञासाधिकरण
सम्पूर्ण हुआ।